समकितनुं मूल जाणीए जी...

(महेसाणा उपनगर जैन संघ में सं. २०६४ में किये हुए प्रवचनों के पदार्थों का संग्रह)

❈ **प्रवचनकार - संग्राहक** ❈

राजप्रतिबोधक प.पू.आ.भ.श्री **विजय रत्नसुंदरसूरीश्वरजी** म.सा. के

शिष्य

मुनिश्री **भव्यसुंदरविजयजी** म.सा.

❈ **संशोधक** ❈

तर्कसम्राट् प.पू.आ.भ.श्री **विजय जयसुंदरसूरीश्वरजी** म.सा. के

शिष्य

प.पू.पं.श्री **प्रेमसुंदरविजयजी** म.सा.

समर्पण

आपश्री ने प्रवज्या प्रदान करके

संसार सागर से मुझे तारा...

आपश्री ने ग्रहण शिक्षा देकर

ज्ञान का प्रकाश दिया...

आपश्री ने अनेक शास्त्रों का अभ्यास करवाकर

जिनवचनों का मर्म समझाया...

आपश्री ने वाचनाओं और हितशिक्षाओं को देकर

मुझे मार्ग में स्थिर किया/रखा...

आपश्री के प्रवचन के पदार्थ ही

मेरे प्रवचन में प्राण पैदा करते हैं...

आपश्री के आशीर्वाद से ही प्रस्तुत चातुर्मास के प्रवचन

अनेक भव्य जीवों को आराधना में जोड सके...

आपश्री के वचन ने ही

मुझे यह लिखने के लिए प्रेरित किया...

ऐसे भवोदधितारक, अनंतोपकारी गुरूदेव;

परम शासन प्रभावक, विपुल साहित्य सर्जक

परम पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद्विजय

रत्नसुंदरसूरीश्वरजी म. सा. के चरणों में

कृतज्ञभाव से यह संग्रह

समर्पित करता हूँ...

भव्यसुंदरविजय

प्रास्ताविकम्

॥ नमो अरिहंताणं ॥

सिद्धांत दिवाकर गच्छाधिपति प. पू. आ. भ. श्रीमद् विजय जयघोषसूरीश्वरजी महाराज साहब और भवोदधितारक गुरुदेवश्री शासनप्रभावक प. पू. आ. भ. श्रीमद् विजयरत्नसुंदरसूरीश्वरजी महाराज साहब की आज्ञा और आशीर्वाद से सं. २०६४ का चातुर्मास महेसाणा उपनगर जैन संघ में हुआ ।

पू. आचार्य जिनलाभसूरिजी म. द्वारा विरचित 'आत्म प्रबोध' ग्रंथ पर प्रवचन हुए । प्रवचन की मुख्य बातें प्रतिदिन बोर्ड पर लिखी जाती थी। बहुत से श्रावकों ने अपनी भावनाओं को व्यक्त किया कि ये बातें हमें पुस्तक के रूप में यदि उपलब्ध हो तो, इसका बार-बार स्वाध्याय हो सकेगा । श्रीसंघ के ट्रस्टीवर्यों तथा कारोबारी समिति के सदस्य, दिल्ली में विराजमान भवोदधितारक गुरूदेव श्री को वंदन करने के लिए गए हुए थे । तब वहाँ पुस्तक छपवाने की आज्ञा देने की विनंती की । पूज्यपाद गुरूदेव श्री ने आज्ञा देने के साथ ही इसमें सहयोग करने की मुझे सूचना दी ।

तदनुसार, इन्हीं बातों पर संक्षिप्त विवेचन लिखकर मैंने श्रीसंघ को सुपुर्द किया ।

अज्ञानता और छद्मस्थतावश जिनाज्ञा विरूद्ध प्ररूपणा न हो जाए, इसलिए तर्कसम्राट् प. पू. आ. भ. श्रीमद्विजय जयसुंदरसूरीश्वरजी महाराज साहब के शिष्यरत्न पू. मु. श्री प्रेमसुंदरविजयजी महाराज साहब को संशोधन करने की विनती की । अध्यापनादि अनेक कार्यों की व्यवस्तता के बीच भी उन्होंने यह विनती स्वीकार की और बहुत सावधानीपूर्वक संशोधन करके मेरी भूलों को सुधारा । अनेक सुंदर-उपयोगी सूचन किए और मेरा उत्साह बढाया । इसलिए मैं आपश्री

का अत्यंत ऋणी हूँ ।

पूर्व में लिखी हुई बातों के पर्युषण तक के भाग को, परम शासनप्रभावक प. पू. पं. श्री चंद्रशेखरविजयजी महाराज साहब के शिष्य रत्न प. पू. मु. श्री गुणहंसविजयजी महाराज साहब ने देखकर अनेक भूलों को सुधारा है, और अनेक उपयोगी सूचन किए हैं, इसलिए मैं आपका भी ऋणी हूँ।

प्रवचन और लेखन के दौरान सदा मेरी सहायता में तत्पर रहनेवाले तथा साक्षीपाठों को तैयार करने में महत्त्वपूर्ण सहायता करने वाले गुरूभ्राता पू. मु. श्री मृदुसुंदरविजयजी महाराज साहब तथा विनेय शिष्य पू. मु. श्री मोक्षसुंदरविजयजी महाराज साहब का उपकार भी कैसे भूल सकता हूँ ?

जो लिखा है, वह महद् अंश से भवोदधितारक पू. गुरुदेव श्री तथा अन्य पूज्यों के प्रवचनों/वाचनाओं/हितशिक्षाओं/पुस्तकों द्वारा प्राप्त हुआ है । कुछ शास्त्रों के अभ्यास से मिला है ।

इसलिए इसमें जो भी सुंदर-हितकर है, उसका यश इन शास्त्रकार पूर्वमहापुरूषों, पू. गुरुदेवश्री और अन्य पूज्य प्रवचनकारों/लेखकों को है ।

जो भी क्षति है, वह मेरी है, इसलिए जिनाज्ञा विरूद्ध कोई भी प्ररूपणा हो गई हो तो अंतःकरणपूर्वक क्षमायाचना करता हूँ, और गीतार्थ बहुश्रुत पूज्यों को मेरी क्षतियों को सम्मार्जित करने की प्रार्थना करता हूँ ।

भव्यसुंदरविजय

पोष सुद-१, संवत २०६४

जैन सोसायटी, पालडी,

अहमदाबाद

विषयानुक्रम



हिंदी आवृत्ति के प्रकाशन के समय

शासनप्रभावक पू. आ. भ. श्री विजय **गुणरत्नसूरीश्वरजी** म.सा. के शिष्यरत्न पू. मु. श्री **भव्यरत्नवि.** म.सा. के अतीव आग्रह से यह हिंदी आवृत्ति का प्रकाशन हो रहा है ।

हम हिंदी अनुवाद और प्रुफरीडिंग में सहाय करनेवालों के प्रति आभार की अभिव्यक्ति करते हैं ।

प्रकाशक

नमो

॥ श्री प्रेम-भुवनभानु-रत्नसुंदरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

॥ ऐं नमः ॥

प्रभु के परम उपकार

❖ जिससे किसी का अहित हो जाए ऐसा भूल से भी कुछ गलत न कहा जाए, इसलिए दीक्षा लेने के बाद जब तक केवलज्ञान न हो तब तक चार ज्ञान के धनी परमात्मा भी प्रायः मौन ही रहते हैं।

❖ केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रभु प्रतिदिन सुबह-शाम १-१ प्रहर (३-३ घंटे) देशना देते हैं। प्रभु वीर ने अंतिम देशना लगातार १६ प्रहर (४८ घंटे) तक दी।

❖ केवलज्ञान की प्राप्ति के पूर्व प्रभु हमारे ऊपर की करूणा के कारण ही बोलते नहीं, मौन रहते हैं और केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद हमारे ऊपर की करूणा के कारण ही लगातार देशना देते हैं।

❖ जब तक हमें किसी क्षेत्र का अधिकृत ज्ञान न हो, तब तक हमें उस विषय पर बोलने का, किसी को उपदेश देने का अधिकार नहीं हैं। फिर भी अगर हम ऐसा करते हैं तो अज्ञानतावश हम उसका अहित कर देंगे, इसकी पूरी सम्भावना रहती है; और ऐसा करने से हमारा भी अहित होगा यह निश्चित है।

इसी तरह हमें जो आत्मकल्याणकारक ज्ञान मिला है, उसे योग्य-पात्र व्यक्तिओं को देते रहना चाहिए, क्योंकि सम्यग्ज्ञान के दान जैसा कोई श्रेष्ठ उपकार नहीं है। इससे हमें भी विशिष्ट पुण्यबंध का लाभ होता है।

मनुष्य जन्म की दुर्लभता

❖ जिसे प्राप्त करने के लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़े, बहुत बड़ा पुरूषार्थ करना पडे, बहुत समय लगे, वह दुर्लभ कहलाता है ।

❖ सुलभ और दुर्लभ इन दो वस्तुओं में से अगर एक को ही पसंद करनी हो तब सुलभ वस्तु को छोड़कर दुर्लभ वस्तु को ग्रहण करे वह समझदारी कहलाती है । जिस प्रकार गुड़ और घेवर इन दो वस्तुओं में से एक ही खाना हो तो, समझदार व्यक्ति रोज मिलनेवाले गुड को छोड़कर घेवर ही खाता है ।

❖ आपको संपत्ति, सामग्री, सुख के साधन दुर्लभ लगते होंगे, पर प्रभु ने जगत में ४ वस्तुएँ दुर्लभ बताई हैं –

(१) मनुष्य जन्म (२) धर्म (जिनवचन) का श्रवण (३) जिनवचन पर श्रद्धा और (४) संयम ।

चक्रवर्ती और इन्द्रों के सुख को भी प्रभु दुर्लभ नहीं मानते हैं ।

❖ परमात्मा ने जिसे दुर्लभ कहा है, ऐसा महामूल्यवान मनुष्यजन्म हमें मिला है; पर हमने इसे व्यर्थ गँवा दिया है, क्योंकि हमने इसकी कीमत ही नहीं समझी हैं ।

१००० रू के नोट की कीमत नहीं समझने वाला नादान बालक उसे कागज समझकर फाड़ देता है, मसल देता है; ऐसा ही नादान कृत्य मूल्यवान मनुष्यभव को मामूली विषय सामग्री के पीछे व्यर्थ करने वाला कर रहा है ।

जिसे १००० रू. के नोट की कीमत पता है ऐसे व्यक्ति को उसे संभालने का उपदेश देने की आवश्यकता नहीं पड़ती; वह खुद ही उसका ध्यान रखता है । इसी तरह मनुष्यभव की सही कीमत अगर हमें समझ में आ जाए तो फिर धर्म के उपदेश की ज्यादा जरूरत हमें नहीं

होगी, क्योंकि हम खुद ही इसका सदुपयोग करने का प्रयत्न करेंगे ।

❖ ग्वाले के लड़के को जंगल में कीमती रत्न मिला । उसे तो वह रंगीन काँच का टुकड़ा ही लगा, उससे वह खेलता खेलता आ रहा था । किसी सेठ ने उसके हाथ में यह रत्न देखा और सोचा कि उसे हडप लेने का अच्छा मौका है । उसने लड़के से पूछा, "बेटा, यह काँच का टुकडा तुम्हें बेचना है ? बोल कितने में देगा ?"

बालक ने कहा, "सेठ, १० रू. दो, तो आपको दे दूँ ।"

सेठ कंजूस थे । अतिलोभ में पडे, उन्होंने सोचा कि १० रू. तो ज्यादा है । लड़के से कहा – "२ रू. में देना हो तो दें । " लड़का ना कहकर चला गया ।

आगे दूसरे सेठ मिले उन्होंने भी रत्न देखा और यही प्रश्न किया । बालक ने जैसे ही १० रू. की कीमत बताई कि उन्होंने तुरंत ही नकद १० रू. देकर रत्न ले लिया । यह सबकुछ पहले वाला सेठ देख रहा था । वह दौड़ते दौड़ते बालक के पास आया और बोला "मूर्ख ! तूने क्या किया, पता है ? १ लाख रू. का रत्न १० रू. में बेच दिया ।" बालक ने कहा "सेठ मैंने तो काँच का टुकडा समझकर अनजान में १० रू. में बेच दिया, पर आपने तो लाख रू. की कीमत का रत्न है, यह जानते हुए भी ८ (आठ) रू. की खातिर नहीं लिया । मूर्ख कौन ? मैं या आप ?"

मनुष्यभव की सच्ची कीमत जिसने समझी ही नहीं, ऐसे इस जगत के करोड़ों, अरबों मनुष्य इसे व्यर्थ गँवा दे, तो वह मूर्खता है ।

पर प्रभु के वचन मिलने के बाद, मनुष्यभव की सच्ची कीमत समझने के बाद भी यदि हम इसे व्यर्थ गँवा दें, तो क्या यह महामूर्खता नहीं हैं ?

❖ मनुष्यभव की १ क्षण की कीमत, करोडो रत्नों से अधिक है । ऐसा शास्त्रकार कहते हैं ।

अनंतानंत पुण्यराशि खर्च होती है, तब मनुष्य जन्म मिलता है, इसलिए इसकी कीमत रत्नों से भी बहुत अधिक हैं । इंद्र को मनुष्यभव मिलता हो तो वह अपनी सारी संपत्ति देने के लिए तैयार हो जाए, किन्तु मनुष्यभव का एक क्षण भी इस तरह मिल नहीं सकता । अरबों रूपए की संपत्ति के बदले में मनुष्य भव का आयुष्य १ क्षण भी बढाया नहीं जा सकता । यह बताता है कि मनुष्य भव का १ क्षण भी बहुत कीमती है ।

❖ एक अमेरिकी धनवान ने ऐसी तिजोरी बनवाई जिसे वह स्वयं ही खोल सकता था । एक बार तिजोरी के अंदर जाने के बाद वह अचानक बंद हो गयी, फिर उसे खोलने का तो कोई उपाय ही नहीं था । बहुत दिनों तक वह भूखा, प्यासा तरसता रहा । अंत में उसके प्राण कंठ तक आ गए, तब उसने एक चिट्ठी में लिखा कि यदि अभी मुझे कोई एक गिलास पानी दे तो मैं उसे अपनी आधी संपत्ति दे दूँगा । मतलब कि अरबों रूपए की किमत, पानी की एक गिलास जितनी हो गयी । सारी संपत्ति तब तक ही मूल्यवान है, जब तक आप जीवित हैं । मृत्यु के बाद आपके लिए इन सारी वस्तुओं का कोई मूल्य नहीं हैं । इसीलिए जीवन की कीमत सभी वस्तुओं से ज्यादा है ।

❖ मनुष्यभव की दुर्लभता को समझाने के लिए शास्त्रकार भगवंतों ने १० दृष्टांत बताए हैं । यह समझने के लिए एक कल्पना कीजिए - भारत के पश्चिमी किनारे पर मुंबई बंदरगाह है । वहाँ के अरबी समुद्र में कोई एक छिद्र वाली लकड़ी डाले । भारत के पूर्वी किनारे पर कोलकता बंदरगाह है । वहाँ के बंगाल के उपसागर में उसी ही छिद्र में फीट हो सके, ऐसी दूसरी लकड़ी कोई डाले । अब आपसे पूछता हूँ - समुद्र में तैरते तैरते ये दोनों लकड़ियाँ आपस में मिल जाएँ, और पहली वाली लकड़ी के छिद्र में दूसरी लकड़ी फिट हो जाए, ऐसा कभी हो सकता है क्या ? आप शायद जवाब देंगे कि हजारों लाखों साल बीतने पर

भी नहीं हो सकता है । शास्त्रकार कहते हैं कि-स्वयंभूरमण समुद्र, जो असंख्य योजन चौड़ा है (१ योजन - ३२०० मील), इसके एक किनारे पर कोई बैलगाडी की आड़ी लकड़ी डाले और दूसरे किनारे पर इसमें जो फिट हो जाए वैसी खड़ी लकड़ी डाले । अब ये दोनों लकड़ियाँ आपस में मिलकर एक दूसरे में फिट हो जाएँ ऐसा कभी हो सकता है ? आप कहेंगे असंभव है - कभी नहीं हो सकता है । शास्त्रकार कहते हैं कि शायद कभी ऐसा हो भी जाए, परंतु एक बार मिला हुआ मनुष्यजन्म, जो धर्मसाधना किए बिना निष्फल चला गया तो अनंतकाल के बाद भी फिर से मिलना मुश्किल है । यह तो उन लकड़ियों के आपस में मिलने से भी अधिक दुर्लभ है !!

❖ एक नौजवान अमेरिका जाकर वापस आया । मित्रों ने पूछा - ''तुम क्या खरीदकर लाये?'' तब उसने गर्व से ''बासमती चावल लाया हूँ''। मित्र ने कहा - ''यार, अमरिका से लाना हो तो ऐसी चीज लाओ, जो यहाँ नहीं मिलती हो ।'' कम्प्युटर या ऐसा कुछ लाते तो ठीक था, पर भारत में आसानी से मिलने वाले चावल लेकर आना तो मूर्खता ही कहलाती है । इस प्रकार मनुष्य जन्म मिलने के बाद, अन्य जन्मों में नहीं मिल सकने वाली धर्मसाधना करना यह समझदारी है, परंतु प्रत्येक जन्म में आसानी से मिलने वाले विषयसुख के पीछे मनुष्यभव को पूरा करना यह कैसी मूर्खता है ?

❖ खाना-पीना, घर बनाना, परिवार का पोषण करना - ये सभी काम तो पशु पक्षी भी करते हैं । मनुष्यभव में भी यदि यही काम करते हैं तो फिर मनुष्यभव की विशेषता क्या ?

भर्तृहरिने मनुष्य बनकर भी विषयसुख में ही आसक्त जीवों को, मानव के रूप में पशु ही कहा है - 'मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।'

❖ हमारे भवोदधितारक गुरूदेवश्री ने एक बहुत अच्छी बात कही है कि जेब से अगर ५ रू. का नोट गिर जाए तो हम अफसोस करते हैं ।

जिंदगी के ५० वर्ष परभव की कमाई किए बिना ही चले गए, इसका कोई अफसोस है क्या ?

❖ एकेन्द्रिय के सिवाय सभी जीवों को एकत्रित करने से जो संख्या आती है उससे भी एकेन्द्रिय जीव अनंतगुणा हैं। और एक बार एकेन्द्रिय में जाने के बाद वहाँ से बाहर निकलना बहुत मुश्किल है। असंख्य पुद्गलपरावर्त्त काल तक जीव एकेन्द्रिय से बाहर निकल ही नहीं सकता ऐसा भी होता है।

१ पुद्गल परावर्त्त में अनंत कालचक्र होते हैं।

१ कालचक्र, २० कोटाकोटी सागरोपम का होता है। जिसके अंदर भरतक्षेत्र में २ बार चौबीस तीर्थंकर हो जाते हैं।

१ सागरोपम १० कोटाकोटी (१० करोड X १ करोड) पल्योपम का बनता है, १ पल्योपम असंख्य वर्षों का होता है, जिसमें महाविदेह क्षेत्र में असंख्य तीर्थंकर हो जाते हैं।

अब कल्पना करो कि एकेन्द्रिय में जीव कितने काल तक रहता है। पूर्व में कहे अनुसार एक बार मिला हुआ मनुष्य भव खोने के बाद, फिर से मनुष्य भव मिलने में अनंतकाल बीत जाता है - इस बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

❖ हम सभी को देवगति का बहुत आकर्षण होता है। देवगति मिलने का स्वप्न भी आनंदित कर देता है। पर शास्त्रकार कहते हैं कि देवगति मिलनी इतनी दुर्लभ नहीं है, जितनी मनुष्यगति मिलनी दुर्लभ है। इसका कारण यह है कि कुल देव असंख्य है जबकि मनुष्य की कुल संख्या 'संख्यात' ही हैं। देवों की संख्या से असंख्यातवाँ भाग है।

❖ रोज सवेरे राई प्रतिक्रमण में 'सकल तीर्थ वंदु कर जोड' में आप बोलते हैं - 'पहले स्वर्गे लाख बत्रीस, बीजे लाख अठ्यावीश....' यह ३२ लाख २८ लाख क्या है? - वह देवलोक के विमानों में विद्यमान जिनमंदिरों की संख्या है। इसमें विराजमान शाश्वत जिन प्रतिमाओं को

नमस्कार करना है । आगे जीवविजयजी महाराज साहब कहते हैं, "व्यंतर ज्योतिषीमां वली जेह, शाश्वता जिन वंदु तेह ।" यहाँ व्यंतर, ज्योतिष देवलोक में विराजमान प्रतिमाओं की संख्या नहीं बतायी है, बल्कि वहाँ जितनी भी प्रतिमाएँ है, उनको वंदन करता हूँ - ऐसा सामान्य रूप से ही कहा गया है । इसका कारण क्या ? शास्त्रकार को यह संख्या पता नहीं है, ऐसा नहीं है । वास्तविकता यह है कि व्यंतर के आवास और ज्योतिष के विमान असंख्य हैं । इनमें विराजमान जिनप्रतिमाएँ भी असंख्य हैं इसलिए इसकी संख्या नहीं बतायी गई है। यदि विमान और प्रतिमाएँ असंख्य हैं, तो देव तो कितने होंगे ? यह तो सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है । (देवलोक ४ प्रकार के हैं- भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक। 'पहले स्वर्गे' आदि जो कहा गया है, वह वैमानिक देवलोक के लिए है । उसमें १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर आते हैं। इसका विस्तृत स्वरूप अन्य ग्रंथों से और गुरू भगवंत के पास से जानें ।)

❖ देव तीनों लोक में हैं। भवनपति देव अधोलोक में (नीचे) हैं, व्यंतर देव तिर्च्छालोक में (हमारे नीचे), ज्योतिष देव तिर्च्छालोक में (हमसे ऊपर) है और वैमानिक देव ऊर्ध्वलोक में हैं । जबकि मनुष्य सिर्फ तिर्च्छालोक में हैं । और उसमें भी सिर्फ अढी द्वीप में ही हैं । तिर्च्छालोक में एक से बढ़कर एक, बड़े बड़े असंख्य द्वीप समुद्र हैं। जिसमें मात्र जंबूद्वीप, धातकीखंड और आधा पुष्करवर द्वीप रूपी अढ़ी द्वीप में ही मनुष्य होते हैं। कभी कोई देव किसी को बाहर ले भी जाए तो भी उसका जन्म-मरण तो अढी द्वीप के अंदर ही होता है, ऐसा नियम है ।

❖ एक तो मनुष्यों की संख्या बहुत कम है । चारों गति के जीव मरकर मनुष्य बन सकते हैं। अग्निकाय, वायुकाय, ७वीं नरक और युगलिक तिर्यंच-मनुष्यों को छोड़कर कोई भी जीव मरकर मनुष्य बन सकता

है । इसलिए मनुष्य गति में आने वाले बहुत सारे उम्मीदवार हैं । देवों की संख्या बहुत है, और इसमें आनेवाले उम्मीदवार कम हैं । मात्र मनुष्य और तिर्यंच ही मरकर देव बन सकते हैं । ज्यादातर अकाम निर्जरा द्वारा असंख्य तिर्यंच मरकर देवगति में जाते हैं ।
(सातवीं नरक के जीव मरकर तिर्यंच गति में ही जाते हैं, ऐसा नियम है । युगलिक मनुष्य-तिर्यंच मरकर देवगति में ही जाते हैं, ऐसा नियम है । अग्निकाय और वायुकाय के जीव मरकर मनुष्य नहीं बन सकते हैं ।)



धर्म की दुर्लभता

❖ मनुष्य जन्म मिलने के बाद भी, जैन धर्म मिलना दुर्लभ है । अरबों मनुष्यों को 'धर्म' नाम की वस्तु ही नहीं मिलती है । साम्यवादी देशों में धर्म के ऊपर प्रतिबंध होता है । करोड़ों लोगों को धर्म के नाम पर बहुत ही जंगलीपन सिखाया जाता हैं । 'दूसरों को मारो-काटो' यही धर्म के नाम पर सिखाया जाता है । इन सभी के बीच जैनधर्म मिलना बहुत दुष्कर है ।

❖ गृहस्थ जीवन में इंजिनियरिंग कॉलेज में बना हुआ एक प्रसंग अभी भी याद है । 'फाउन्ड्री' का पीरियड था, जिसमें लुहारीकाम करना होता है । उसमें हम ५-६ मित्र लोहे के सलिये को गरम करके, उसे ठोककर उसमें से '८' जैसा आकार बनाकर उसे ठंडा करने के लिए बाहर बगीचे के पास खड़े-खड़े बात कर रहे थे । तब एक विद्यार्थी ने बगीचे से सूखा पत्ता लिया और धधकते हुए लोहे के सलिये से उसे सटाया। पत्ता जलने लगा और जलता हुआ पत्ता लेकर उसने पास में ही जा रही चींटियों की लाइन पर फेंक दिया । निरपराधी-निर्दोष जीवों को निष्कारण मार डालने की कैसी क्रूर लेश्या ? हम इससे बच गए हैं, यह श्राविका माता की कोख से मिले हुए जन्म का प्रभाव है । हमारे खून में जीवदया के संस्कार हैं, जिसके कारण अनजाने में भी चींटी मर जाए तो पश्चात्ताप होता है । यह जैन धर्म मिलने की फलश्रुति है, हमारा महान सौभाग्य है । दुनिया के ९९% से भी अधिक मनुष्यों को ऐसे संस्कार मिले ही नहीं हैं ।

❖ धर्म मिलने के बाद उस पर श्रद्धा होना बहुत दुर्लभ है और श्रद्धा होने के बाद भी उसका आचरण करना तो बहुत कठिन है ।

❖ जिसको संयम दुर्लभ लगता है, वह संयम को पाने के लिए संसार छोड़

देते हैं क्योंकि संसार तो सुलभ है, हर जन्म में मिल सकता है ।

❖ जंगल उसे कहते हैं, जिसमें से बाहर निकलने का कोई रास्ता ही नहीं मिले । शास्त्रकारों ने संसार को जंगल की उपमा दी है, जो बहुत उपयुक्त है ।

❖ जिसे संयम की रुचि भी नहीं, उसे श्रावक बनने में अभी समय है, क्योंकि श्रावक यदि संयम ले नहीं सके तो भी उसे रुचि तो होती ही है ।

❖ "रात्रिभोजन करने योग्य नहीं है ।" परमात्मा का यह वचन जिसे अच्छा लगता है, क्या वह शौक से रात्रिभोजन करेगा ? जिन्हें बाजार, व्यापार आदि के कारण रात्रिभोजन करना पड़ता हो, क्या वह छुट्टी के दिन रात्रिभोजन करेगा ?

वास्तव में 'रात्रिभोजन करने योग्य नहीं है' यह प्रभुवचन, अभी तक हृदय में बसा ही नहीं है ।

❖ आपको जिनवचन अच्छे लगते हैं ?

सभा : इसलिए तो व्याख्यान में आते हैं ।

व्याख्यान में आते हैं, इसका अर्थ यह नहीं है कि जिनवचन अच्छा ही लगता है । प्रभु के जन्माभिषेक में असंख्य देव जाते हैं । पर सभी प्रभु के प्रति प्रीति और भक्ति से ही जाते हैं ऐसा नहीं हैं । स्नात्रपूजा में पू. वीरविजयजी महाराज साहबने कहा है "कई देवता स्वयं की भक्ति के कारण जाते हैं (आत्मभक्ति); कई देवता मित्रों के पीछे पीछे जाते हैं (मित्तनुजाई); कई देवता देवी के धकेलने से जाते हैं (नारीप्रेर्या); कई देवता मात्र स्वयं के कुलाचार होने से जाते हैं (निज कुलवट) ।"

आप व्याख्यान में किससे प्रेरित होकर आते हैं ?

कई लोग निश्चित रूप से प्रभुवचन सुनने के लिए ही आते हैं ।

कितनों को मित्र खींचकर लाते हैं, कितनों को पत्नी धकेलती है, कई लोग मात्र लोगों को दिखाने के लिए ही आते हैं। इसलिए प्रभुवचन अच्छा लगता ही है ऐसा निश्चित नहीं है। जिसे जिनवचन अच्छा लगता है, उसे जिनवाणी सुनने की कैसी आतुरता होती है, यह हम आगे 'शुश्रूषा' नामक सम्यक्त्व के लिंग में देखेंगे।



मनुष्यभव की सफलता

❖ सोने के पात्र में अमृत पिया जाता है, अमृत न हो तो दूध पिया जाता है, पर दारू पीने की मूर्खता तो नहीं ही की जाती है। मनुष्यजन्म ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करने के लिए मिला है; उसमें पाप करना, यह सोने के पात्र में दारू पीने जैसी मूर्खता है।

❖ दुकान खोलने के बाद १ वर्ष नुकसान करे, दूसरे वर्ष भी नुकसान करे, इसी तरह सतत ५-१० वर्ष तक नुकसान ही करे, तो समझदार व्यापारी दुकान बंद करके दूसरा धंधा करता है। अनंतानंत भवों से सामग्री में सुख ढूँढने की कोशिश आप कर रहे हैं, फिर भी सुख मिला ही नहीं। तो फिर नहीं लगता कि इस दिशा के प्रयत्न बंद करके दूसरी दिशा के प्रयत्न शुरू करने चाहिए ?

❖ अहमदाबाद से महेसाणा जाने के लिए निकले हो, पता है कि २ घंटे का रास्ता है। २ घंटे बीत जाएँ, २.३० घंटे बीत जाएँ, ३ घंटे भी बीत जाएँ, फिर भी महेसाणा नहीं आए; तो तलाश करते हैं कि रास्ता भूल तो नहीं गए ना ? सुख की खोज में इतने सालों से निकले हो, अभी भी सुख मिला ही नहीं; तो क्या आपको नहीं लगता कि आप रास्ता ही भूले हैं ?

❖ लाख प्रयत्न करने पर भी समुद्र की रेत से घड़ा नहीं बनता है, उसी तरह अनंत काल बीतने पर भी संसार में सुख नहीं मिलता है।

❖ इस जगत का कोई भी सुख ऐसा नहीं है, जो हमने भोगा नहीं हो; परन्तु हमें अभी तक तृप्ति नहीं मिली। तो भी इस भव में तृप्त होने की आशा लेकर बैठे हो !

❖ कुत्ता हड्डी को चबाता है, खून उसके मुँह से निकलता है, उसका स्वाद लेने में वह सुख का अनुभव करता है। उसे भ्रम होता है कि

हड्डी में से खून निकल रहा है, इसलिए वह ज्यादा चबाता है, जिससे उसके मुँह से ज्यादा खून निकलता है। सामग्री में से सुख मिलने की कोशिश करने वाले सभी की हालत उस कुत्ते जैसी ही है।

❖ आप जो धन कमाते हैं, उसे आपका परिवार, पुत्र, पत्नी, मित्र भोगता है; और धन कमाने के लिए आप जो पाप करते हैं, उसका फल आपको अकेले ही भोगना है।

❖ गेहूँ की ही रोटी खा सकते हैं, सोने की रोटी कोई खा नहीं सकता। एक बार में एक जोड़ी से ज्यादा कपड़े कोई पहन नहीं सकता। ६ फूट x ३ फूट से ज्यादा जगह में कोई सो नहीं सकता। इसलिए इससे अधिक संपत्ति की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी उसके पीछे दौड़ने में जिंदगी पूरी हो जाती है।

❖ घी वाला गरम भोजन, बिना छिद्र वाले कपड़े और दूसरों की गुलामी नहीं, इससे अधिक संपत्ति मनुष्य का अधःपतन करती है।

❖ जिसे स्वयं की आत्मा के लिए समय नहीं मिलता, उसके जैसा दरिद्र इस दुनिया में कोई नहीं है।

❖ जिसके पुण्य प्रभाव से आने वाले समय में मनुष्य जन्म और जिनशासन मिले, ऐसे सुकृत हमारे जीवन में है क्या ? यदि इतना भी हमारे पास नहीं है, तो फिर दुर्गति और दुखों की परंपरा के लिए तैयार रहे बिना चारा नहीं।

❖ प्रत्येक वर्ष आय-व्यय का हिसाब-किताब बनाते हो, लेकिन मैंने अपनी आत्मा के लिए क्या किया ? उसका हिसाब-किताब जीवन में एकबार भी बनाया है ? ऐसा हिसाब-किताब बनाओ तो किस और पलड़ा भारी होगा ? जमा या उधार ?

❖ कितना भी दान करने वाला या छः महीने तक उपवास करने वाले श्रावक को भी साधु जैसा नहीं कहा गया है, लेकिन १ सामायिक करने वाला श्रावक साधु जैसा कहा जाता है। यह बताता है कि सामायिक

श्रावक के लिए श्रेष्ठ धर्म है ।

❖ आने वाले भव में जिसे चारित्र चाहिए, उसे इस भव में अधिक से अधिक सामायिक करनी ही चाहिए । सामायिक करने से चारित्र मोहनीय कर्म टूटते हैं और भवांतर में चारित्र मिलता है ।



परमात्म नमस्कार

❖ प्रारंभ किया गया कार्य (ग्रंथरचना) निर्विघ्न रूप से पूर्ण हो, इसलिए ग्रंथकार प्रारंभ में परमात्मा को नमस्कार करते हैं ।

❖ कार्य में विघ्न आते हैं, पापकर्म (अंतरायकर्म) के उदय से और परमात्मा को किया गया नमस्कार, पापकर्म का नाश कर विघ्नों का नाश करता है ।

❖ अंतराय कर्म बंधने का एक कारण है - अहंकार । जिस वस्तु का अहंकार हम करते हैं, उससे कर्मसत्ता हमें दूर फेंक देती हैं । प्रभु वीरने तीसरे मरीचि के भव में उच्चकुल का अभिमान किया, तो कर्मसत्ता ने अंतिम भव में प्रभु को नीच कुल में उतार दिया । उच्चकुल से दूर रखा ।

❖ पापकर्म का नाश तो तपस्या आदि से भी हो सकता है, लेकिन उससे अंहकार का नाश न भी हो ऐसा हो सकता है । नमस्कार ऐसा मंगल है जिससे पाप का नाश तो होता ही है और इसके कारणरूप अहंकार का भी नाश होता है ।

❖ हाथ जोड़ना, मस्तक झुकाना इत्यादि द्रव्य नमस्कार हैं । जिसे नमस्कार किया जा रहा है, वह मुझसे अधिक गुणवान है, मैं उससे अधम हूँ; ऐसी बुद्धि यह भावनमस्कार है । हम जब परमात्मा को नमस्कार करते हैं, तब मैं अधम हूँ, नीच हूँ, दुष्ट हूँ, ऐसी बुद्धि आती है सही ? यदि प्रभु को नमस्कार करते समय भी "मैं ट्रस्टी हूँ, सेठ हूँ, श्रीमंत हूँ, विद्वान हूँ" इत्यादि स्वयं का बड़प्पन ही याद आता हो, तो भावनमस्कार तो होता ही नहीं । अहंकार का नाश करने के लिए नमस्कार करते हैं, यदि नमस्कार करते समय भी अहंकार ही झलकता हो तो इसे कैसा नमस्कार कहेंगे ?

❖ 'मैं और मेरा' ये मोहराजा के दो मंत्र हैं, जो पूरे जगत को अंधा कर देते हैं ।

❖ परमात्मा को नमस्कार करके शुरू किया गया कार्य सफलतापूर्वक पूर्ण होता है, तो भी 'मैंने किया' ऐसा अहंकार नहीं होता हैं, पर 'परमात्मा की कृपा से ही हुआ' ऐसी श्रद्धा उत्पन्न होती है । यह भी नमस्कार करने का महान् लाभ है ।

❖ जिसे कोई भी विघ्न आने की संभावना नहीं हैं, क्योंकि अंतराय कर्म हमेशा के लिए क्षय हो गया है; ऐसे अरिहंत परमात्मा भी समवसरण में देशना देने से पहले 'नमो तित्थस्स' कहकर तीर्थ को नमस्कार करके मंगल करते हैं । इसका कारण यह है कि सज्जनों की यह परंपरा रही है कि प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में मंगल करना ही चाहिए । इसलिए प्रभु भी मंगल करते हैं । इसका सार यह है कि बहुत समय पूर्व से परंपरा से जो करते आए हैं, इसका कोई प्रयोजन नहीं हो उससे कोई कार्य न भी होने वाला हो तो भी उसको छोड़ना नहीं चाहिए ।

❖ अनंत लब्धि के धारक, असंख्य काल के ज्ञान को धारण करने वाले, चौदह पूर्वधर, महाबुद्धिमान पूर्वाचार्य भी ग्रंथ के प्रारंभ में मंगल करते हैं । यह बताता है कि उन्हें अपनी बुद्धि से भी ज्यादा परमात्मा को किए गए नमस्कार की शक्ति पर श्रद्धा थी ।

❖ संसार के कार्यों के प्रारंभ में भी प्रभु को नमस्कार किया गया हो, तो वह नमस्कार की ताकत है कि दुर्बुद्धि पैदा होने नहीं देगा ।

❖ आप किसी तीर्थ में गए हों, उपाश्रय में मुनि भगवंत विराजमान हैं, यह खबर मिली और आपने वंदन किया । धर्मशाला के रूम पर वापस आने के बाद, दूसरे किसी यात्री के द्वारा आपको समाचार मिला कि ''ये मुनि भगवंत महातपस्वी है, अठ्ठम के पारणे में अट्ठम करते हैं, पारणे में भी निर्दोष गोचरी से ही एकासणा करते हैं । या महाविद्वान हैं, संस्कृत में हजारों श्लोक प्रमाण नया सर्जन किया है । अथवा प्रखर

प्रवचनकार हैं, उनकी शिबिरों में ४-५ हजार लोगों की संख्या होती हैं।" ऐसे समाचार मिलने के बाद आप फिर वंदन करने गए। अभी के वंदन और पूर्व के वंदन के भाव में कोई फर्क पडेगा ?

सभा : जमीन आसमान का।

इसका अर्थ है कि जैसे ही व्यक्ति के गुणों की पहचान होती है, वैसे ही उसे किया गया नमस्कार अधिक भावपूर्ण बन जाता है। परमात्मा इस जगत में सर्वोत्कृष्ट गुणवान् हैं, इसलिए परमात्मा को किया गया नमस्कार सबसे अधिक भावपूर्ण बन जाता है, और इसकी ताकत भी सबसे अधिक है। इसीलिए ग्रंथकार प्रथम परमात्मा को नमस्कार करते है। इस नमस्कार को भावपूर्ण बनाने के लिए पहले हमें परमात्मा को पहचानना पड़ेगा।

❖ दूसरे किसी को नमस्कार करते समय "यह मुझसे हर तरह से ऊँचा है, मैं नीचा हूँ" ऐसा भाव नहीं भी आए, ऐसा हो सकता है। कोई मुनि भगवंत संयमी होने पर भी, शरीर की क्षमता न होने के कारण तप बिल्कुल भी न कर सकते हो, ज्ञानावरणीय कर्म के तीव्र उदय होने के कारण स्वाध्याय न कर सकते हो, ऐसा संभव है। ऐसे मुनिवर को वंदन करते समय, संभव है कि उनमें तप और ज्ञान गुण नहीं है, यह याद आए तो आपका नमस्कार निर्बल हो जाए। "कई चीजों में उनसे ऊँचा हूँ" ऐसे विपरित भाव भी आ सकते हैं। परमात्मा सर्वगुणसंपन्न है, हमारे अंदर ऐसा एक भी गुण नहीं है जो परमात्मा में न हो। इसलिए परमात्मा को नमस्कार करते समय "किसी भी तरह से मैं परमात्मा से ऊँचा हूँ" ऐसा विचार नहीं आ सकता, जिससे परमात्मा को किया गया नमस्कार सबसे अधिक बलवान हो सकता है।

❖ परमात्मा को किया गया एक भी नमस्कार, सर्व पापों को नाश कर सकता है, हमें संसार से तार सकता है। शर्त यह है कि मात्र द्रव्य नमस्कार नहीं, भावनमस्कार होना चाहिए, अर्थात् परमात्मा के प्रति

भक्तिभाव से भरपूर चाहिए ।

❖ बंदूक में से निकली हुई गोली शरीर से आरपार निकल जाती है । और हाथ से फेंकी गई गोली की कोई लंबी ताकत नहीं होती है । अर्थ यह है कि ताकत मात्र गोली में नहीं है, बल्कि बंदूक के द्वारा दी गई गति की है । इसी प्रकार अकेली साधना की ताकत नहीं होती, भावना सहित साधना की ही ताकत होती है ।

❖ लाख रुपए के लाभ होने की संभावना हो ऐसे सौदे में २००-५०० रुपए का लाभ हो तो भी 'नुकसान हुआ' यही कहलाता है । सभी कर्मों को क्षय करने की ताकत को धारण करने वाले नमस्कार से मात्र मामूली पुण्यबंध हो तो नुकसान हुआ, यही कहलायेगा ना ?

❖ नमस्कार का पूर्णफल प्राप्त करने के लिए नमस्कार को भावपूर्ण बनाना पडता है । और इसके लिए प्रभु को पहचानना पडेगा । ''ललितविस्तरा'' ग्रंथ में हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज साहब ने लिखा है कि चैत्यवंदन करते समय सम्यक्त्वी की आंखों में से आनंद के आंसू की धारा चलती है । ''ऐसे महान् प्रभु मुझे मिले ! मेरा प्रचंड पुण्योदय!'' संसार में कोई सिद्धि मिलती है तो उसका आनंद होता है, पर ऐसे प्रभु, प्रभुवचन, सद्गुरु मिल गए है, यह आपका प्रचंड सद्भाग्य है, इसका कभी आनंद हुआ है ?

❖ ग्रंथकार मात्र मन से नमस्कार करे तो भी मंगल हो जाता है, कार्यसिद्धि हो जाती है । लेकिन उन्होंने ग्रंथ में नमस्कार लिखा इसका कारण यह है कि -

(१) ऐसा करने से वाचकों को भी सहज रूप से नमस्कार रूपी मंगल ग्रंथ के प्रारंभ में ही हो जाता है, उनके भी कर्मों का क्षय हो जाता है, और ग्रंथ का वाचन निर्विघ्न पूर्ण हो जाता हैं ।

(२) शिष्यों को भी यह ख्याल आता है कि ''हमारे गुरुदेव ग्रंथ के प्रारंभ में नमस्कार करते थें, इसलिए हमें भी करना चाहिए ।



अरिहंत परमात्मा

❖ अरिहंत शब्द मूल 'अर्हम्' शब्द से बना हैं, जिसका अर्थ है, अष्ट महाप्रतिहार्य इत्यादि कि पूजा के योग्य। अशोकवृक्ष, पुष्पवृष्टि, दिव्यध्वनि, चामर, सिंहासन, भामंडल, देवदुंदुभि, छत्रत्रय... यह आठ प्रातिहार्य प्रभु की सेवा करते हैं। "प्रातिहार" देव इन प्रातिहार्यों की रचना करते हैं।

❖ अरिहंत का यह भी अर्थ होता है कि 'अरि' अर्थात् आंतरशत्रुओं को और हंत अर्थात् हनन करनेवाले। यहाँ यह समझना है कि राग-द्वेषरूपी आंतरशत्रुओं का तो सामान्य केवलि भगवंत भी हनन करते हैं, परंतु वह अरिहंत नहीं होते हैं। अरिहंत तो पूर्व के तीसरे भव में जिसने तीर्थंकर नामकर्म निकाचित किया हो, उसके प्रभाव से केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद, तीर्थ की स्थापना करे, अष्ट महाप्रतिहार्य उनकी सेवा करे, वह ही कहलाते हैं।

❖ समुद्र अपार है, फिर भी यदि बालक से पूछा जाए कि समुद्र कितना बडा है ? तो वह दोनों हाथ फैलाकर जवाब देता है कि "इतना"। समुद्र इससे भी बडा होने पर भी वह उसकी बुद्धिशक्ति के मुताबित जवाब देता है। इसी तरह परमात्मा के गुण अनंत है। एक हजार जीभ से भी उनके गुणों का वर्णन करो तो भी पूरी जिंदगी में पूर्ण न हो। फिर भी हम उनके गुणों को गाने का प्रयत्न करे तो पहले कही गई बालचेष्टा जैसा हैं।

❖ परमात्मा की देशना के लिए रचाते समवसरण के चारों और देव ६ ऋतुओं के ५ वर्ण के सुगंधीदार दिव्य पुष्पों की वृष्टि करते हैं। सामान्य से फूल नीचे गिरे तो पंखुडी नीचे और डंडी ऊपर रहती हैं, पर प्रभु के पुण्य प्रभाव से यह सभी पुष्पों की डंडी नीचे हो जाती है और पंखुडी ऊपर रहती है, जिससे चलने वाले को यह चुभते नहीं है। इतने सारे पुष्प देव बरसाते हैं, इसका इतना ढेर हो जाता है कि

चलने वाले मनुष्य के घुटने तक के पैर ढक जाते हैं । इन पुष्पों पर से करोडो देव, मनुष्य चलकर जाते हैं । "प्रवचन सारोद्धार" नाम के ग्रंथ में ग्रंथकार ने प्रश्न किया कि-इतने सारे सचित्त पुष्प होते हैं तो साधु-साध्वी भगवंत उनके ऊपर चलकर प्रभुजी की देशना में कैसे जाते हैं ? क्योंकि साधु-साध्वीजी तो सचित्त पुष्पों का स्पर्श भी नहीं करते है, तो फिर इस पर पैर कैसे रखते हैं ? यह फूल देवो द्वारा बनाए हुए नहीं होते है, सच्चे होते हैं । ग्रंथकारने ही जवाब दिया कि प्रभु का ऐसा अतिशय है, पुण्य प्रभाव है कि करोडों देव, मनुष्य इस पर से चलकर जाए तो भी पुष्पों के जीव को दुःख नहीं होता है, उलटा अमृत का सिंचन किया हो ऐसा आनंद आता है । इसलिए साधु-साध्वी भगवंत इनके ऊपर चलकर प्रभु की देशना में जा सकते हैं ।

❖ शतावधान करने वाला एक साथ पूछे गए सौ प्रश्नों के क्रमशः उत्तर देता है । संतिकरं के रचयिता पू. आ. भगवंत मुनिसुंदरसूरि सहस्त्रावधानी थे, मतलब कि उन्हें यदि एक साथ एक हजार प्रश्न पूछे जाएँ तो वे उन सभी प्रश्नों के क्रमशः उत्तर दे सकते थे । प्रभु की वाणी का अतिशय ऐसा है कि प्रभु को चाहे कितने भी अलग-अलग प्रश्न पूछो, उनका उत्तर प्रभु क्रमशः नहीं, बल्कि एक ही वाक्य में देते हैं । प्रभु ऐसा वाक्य बोलते हैं, जिससे सभी को अपना अपना उत्तर मिल जाता है । हमें यह आश्चर्यजनक-असंभव लगता है । लेकिन यह सम्भव है, वास्तविकता है ।

यही प्रभु का अतिशय है ।

अकबर के दरबार में यह बात हुई तो अकबर को भी असंभव लगा था । तब समयसुंदर उपाध्याय ने "राजा नो ददते सौख्यम्" इस एक ही वाक्य के अलग-अलग आठ लाख अर्थ करके बताये थे, और यह सिद्ध कर दिया कि एक वाक्य के अनेक अर्थ हो सकते हैं । इसी तरह प्रभु ऐसा उत्तर देते हैं जिससे सभी प्रश्नों के उत्तर एक साथ सभी को

मिल जाए। पू. समयसुंदरजी ने जो आठ लाख अर्थ करके बताए थे, उनका ग्रंथ आज भी विद्यमान हैं।

यह समझने के लिए शास्त्र में एक कथा आती है। एक भील जंगल में अपनी पत्नियों के साथ जा रहा था। तब उसकी पत्नियों ने अलग-अलग प्रश्न किए। एक पत्नीने कहा - "मुझे प्यास लगी है, पानी लाकर दो।" दूसरी ने कहा "मुझे गीत सुनने का मन हो रहा है, कोई गीत सुनाओ।" तीसरीने कहा "मुझे माँस खाना है माँस लाकर दो।" इन सभी का भील ने एक ही वाक्य में जवाब दिया - 'सरो नत्थि'। इसका अर्थ इस प्रकार है - पहली पत्नी को पानी चाहिए था। उसे कहा, 'सरो नत्थि' यहाँ सरोवर नहीं है - पानी कहाँ से लाऊँ ?

दूसरी पत्नी को गीत सुनना था। उसे कहा, "सरो नत्थि" - मेरे गले में स्वर नहीं है, गीत कहाँ से सुनाऊँ ?

तीसरी पत्नी को मांस खाना था। उसे कहा - "सरो नत्थि" बाण नहीं है शिकार कैसे करूँ ? इस तरह एक ही वाक्य में सबके जवाब दिए।

❖ परमात्मा का रूप इतना तेजस्वी है कि मनुष्य आँखों से देख ही नहीं सकता, इसलिए देव प्रभु के पीछे भामंडल की रचना करते हैं, जो सूर्य से १२ गुणा तेजस्वी होता हैं। वह प्रभु के तेज का संहार कर लेता है-जिससे हम प्रभु के मुख को देख सकते है। प्रभु के रूप का वर्णन करते हुए शास्त्रकार लिखते हैं कि सभी देवों के सभी रूपों को इकट्ठा करके एक अंगुष्ठप्रमाण क्षेत्र में केन्द्रित किया जाए, तो भी प्रभु के रूप के सामने काले कोयले जैसा लगता है।

देव का रूप कैसा होता है ? तो बताते हैं - मनुष्यों में अरिहंत और गणधर के बाद श्रेष्ठ रूप चक्रवर्ती का होता है। भरत चक्रवर्ती की प्रार्थना से इन्द्र ने उसे एक ऊँगली ही दिखाई, जिससे भरत महाराजा इतने आकर्षित हुए कि इसकी खुशी में ८ दिन तक इन्द्र महोत्सव किया।

❖ समवसरण में प्रभु पूर्वाभिमुख बैठते हैं । बाकी की तीन दिशाओं में देव प्रभु की प्रतिकृति की रचना करते है । देखने वाले सभी को ऐसा ही लगता है कि प्रभु मेरी ओर ही बैठे हैं । लेकिन देव स्वयं की ताकत से प्रभु की प्रतिकृति बना नहीं सकते, प्रभु के पुण्यप्रभाव से ही यह संभव हो पाता है ।

❖ प्रभु ने जो तीर्थंकर नामकर्म बाँधा है, उसका उदय तो केवलज्ञान के बाद होता है, परन्तु जन्म से ही प्रभु का पुण्य इतना प्रचंड होता है कि जन्म होते ही ६४ इंद्र का सिंहासन कंपायमान होता है, वे मेरू पर्वत पर प्रभु का जन्माभिषेक करते हैं ।

❖ पाँच भरत और पाँच ऐरावत में एक साथ ही प्रभु का जन्म होता है। इसलिए १० परमात्माओं का जन्माभिषेक भी साथ में ही होता हैं । मेरू पर्वत ५ हैं । प्रत्येक मेरू के ऊपर प्रभु के अभिषेक के लिए ६-६ सिंहासन हैं । ४ महाविदेह के तीर्थंकरों के लिए, १ भरत क्षेत्र के तीर्थंकर के लिए और १ ऐरावत क्षेत्र के तीर्थंकर के लिए । जब भरत-ऐरावत में रात होती है तब महाविदेह क्षेत्र में दिन होता है । प्रभु का जन्म मध्यरात्रि में ही होता है, ऐसा नियम है । इसलिए जब भरत-ऐरावत में प्रभु का जन्म होता है, तब महाविदेह में जन्म नहीं हो सकता है।

❖ प्रभु का अभिषेक १ करोड ६० लाख कलशों से होता है, और प्रत्येक कलश की नली १ योजन (८ माईल) लंबी होती हैं । कितने पानी का बहाव होता होगा, इसकी मात्र कल्पना ही कर सकते हैं ।

❖ प्रभु का पुण्य कितना उत्कृष्ट है, जो ३४ अतिशयों, वाणी के ३५ अतिशयों को जानकर ही समझा जा सकता है । चौमासी के देववंदन में बोले जानेवाले श्री ऋषभदेव भगवान, श्री शांतिनाथ भगवान, श्री नेमिनाथ भगवान, श्री पार्श्वनाथ भगवान और भी महावीर स्वामी भगवान के स्तवनों में इन ३४ अतिशयों का वर्णन बहुत सरल गुजराती भाषा में किया गया है । इसी तरह अरिहंत वंदनावली में भी संक्षिप्त में सुंदर

वर्णन है । इन सभी स्तवनों, स्तुतियों को पढ़कर या किसी और तरीके से प्रभु के पुण्य की प्रकृष्टता को जानिए, जिससे प्रभु के प्रति आपका बहुमानभाव बढ जाएगा ।

❖ प्रभु मात्र सर्वोत्कृष्ट पुण्य के ही स्वामी नहीं है, सर्वोत्कृष्ट गुणों के भी मालिक हैं, और वास्तविक महानता गुणों के स्वामित्व से ही है ।

❖ प्रभु का सर्वोत्कृष्ट गुण है, करूणा । पूर्व के तीसरे भव में जगत के सभी जीवों को संसार से तारने की, सभी दुखों से मुक्त करने की, शाश्वत काल तक सुखी कर देने की प्रकृष्ट करूणा भावना से प्रभु भावित होते हैं, जो प्रभु को तीर्थंकर नामकर्म की भेंट करती है ।

❖ परमात्मा के कान में कीलें ठोके गए, परन्तु प्रभुने थोडा भी क्रोध नहीं किया । हमारे कान में तो २-४ कटु वचन पडते हैं, इतने में ही हम लाल-पीले हो जाते हैं, कहाँ प्रभु और कहाँ हम ?

❖ जब तक जगत के सभी जीवों के प्रति मैत्रीभाव हृदय में स्थापित नहीं होता, तब तक कोई भी आराधना धर्म नहीं बनती ।

एक जीव के प्रति भी तिरस्कार-वैर हृदय में भरा हो तो आराधना सफल नहीं होती ।

❖ चाहे जितने भी दुश्मन हों, उससे हमारा मोक्ष नहीं अटकता; परन्तु हमारे हृदय में यदि एक जीव के प्रति भी वैरभाव है, तो हमें मोक्ष मिलने वाला नहीं है यह निश्चित है ।

❖ प्रभु के कान में कीलें ठोके गए, क्योंकि अठारहवें भव में प्रभु ने शय्यापालक के कान में गरम सीसे का रस डाला था । यह बात हमें सरलता से समझ में आ जाती है । किंतु जब हमारे जीवन में दुख आता हैं, कोई हमें परेशान करता है, तब हमने किसी को दुख दिया होगा, किसी को परेशान किया होगा, उसीका फल हमें मिल रहा है, यह हमें याद नहीं आता हैं । तब हम एकदम से क्रोध में आ जाते हैं ।

❖ तर्क से यदि किसी व्यक्ति की भूल सिद्ध हो सकती हो, तो भी हमें जो कुछ भी भोगना पड़ा है, उसका मूल कारण तो अपने स्वयं का ही पूर्वभव का कर्म, हमारी ही भूल है, यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए। किसी ने आपको ठगा हो तब आप कहते हैं, "साहब, इसने मुझे ठगा है इसलिए इसके ऊपर क्रोध तो आएगा ही ना !"

मैं आपसे पूछता हूँ कि उसे किसी और को ठगने का मन क्यों नहीं हुआ ? आपको ही ठगने का मन क्यों हुआ ? इसका कारण आपका ही पूर्वभव का कर्म है, इसलिए निश्चित है कि भूल आपकी ही है।

❖ आप संवत्सरी के दिन 'मिच्छामि दुक्कडम्' बोलकर क्षमा माँगते हो। 'मिच्छामि दुक्कडम्' का अर्थ है, मेरे पाप मिथ्या हो। अब, जब तक "मैंने पाप किया है" यह आपका हृदय स्वीकार नहीं करता, तब तक मिच्छामि दुक्कडम् माँगने का अर्थ ही क्या ? इसलिए पहले यह स्वीकारना पड़ता है, कि "मैंने पाप किया है" (यदि सामने वाले की ही भूल हो, तो भी अपने पूर्वभव की भूल ही इसका मुख्य कारण-पाप है) तभी मिच्छामि दुक्कडम् सच्चा कहलाता है।

❖ यदि मिच्छामि दुक्कडम् देने के बाद भी आप यही मानते हैं कि भूल तो उसी की है/थी, तो आपका मिच्छामि दुक्कडम् मात्र द्रव्य क्रिया है, सच्ची क्षमापना नहीं है।

❖ सामने वाले की भूल को संपूर्ण रूप से भूल जाना ही सच्ची क्षमापना है। किसी के साथ भी दुश्मनी रखनी नहीं चाहिए। उसमें भी संघ, संघ के सदस्यों के साथ शत्रुता भवांतर में संघ की प्राप्ति दुर्लभ कराने वाली है।

❖ क्रोध छोड़ने के लिए यह विचार करो - दारू पिया हुआ व्यक्ति चाहे कितना भी बोल दे, फिर भी हमें गुस्सा नहीं आता, क्योंकि हम जानते हैं कि 'वह व्यक्ति नहीं बोल रहा है, शराब बोल रही है।' इसी तरह जब कोई व्यक्ति प्रतिकूल वर्तन करे, तब यह विचार करो कि 'यह

व्यक्ति नहीं कर रहा है, उसका मोहनीय कर्म उसके पास से प्रतिकूल वर्तन करवा रहा है,' तो आप को गुस्सा नहीं आएगा ।

❖ आपको १ रात में १ मच्छर, २० बार काटे तो भी उसके प्रति क्षमा रखनी, मैत्रीभाव रखना, करुणा टिकाना मुश्किल है, लगभग असंभव है । प्रभु के ऊपर संगम ने १ ही रात में २० महाभयानक उपसर्ग किए, तो भी प्रभु की संगम के प्रति करूणा जरा सी भी कम नहीं हुई ।

❖ कभी किसी की एक दो भूल हम माफ कर देते हैं, पर वह एक ही भूल बार बार करे, तो हमें गुस्सा आ जाता है । हमने अनंत बार भूल की, प्रभु ने उसे अनंतबार माफ किया तो भी हम सुधरे नहीं । फिर भी प्रभु की हमारे प्रति करूणा थोडी भी कम नहीं हुई।

❖ प्रभु का उत्कृष्ट कक्षा का गुण है **अप्रमत्तता**... । प्रभुवीर १२.५ वर्षो के साधना काल में एक बार भी पलाठी लगाकर बैठे नहीं, लंबे होकर सोने की तो कोई बात ही नहीं । हमेशा कायोत्सर्ग ध्यान में ही रहे । काउसग्ग में खड़े-खड़े थकान लगने से नींद आ गई ऐसा प्रभु का निद्राकाल १२.५ वर्ष में कुल १ **अंतर्मुहूर्त** का (४८ मिनिट से कम) है । ऋषभदेव भगवान के १००० वर्ष के छद्मस्थ काल में प्रमादकाल १ अहोरात्र (२४ घंटे) का है, जो १ वर्ष में डेढ़ मिनट जितना होता है । १ दिन में १/४ सेंकड होता है ।

❖ जिसके पीछे बिल्ली पड़ी हो, ऐसा चूहा एक क्षण भी आराम नहीं करता है । समुद्र में तैरने निकला हुआ मनुष्य बीच में १ क्षण भी थकान उतारने के लिए रूकता नहीं है । तो फिर जिसके पीछे बुढापा, रोग और मृत्यु पड़ी है, संसाररूपी अपार सागर को जिसे पार करना है, ऐसे हम आराधना करने में एक क्षण का भी प्रमाद किस तरह कर सकते हैं ?

❖ प्रभु का **गांभीर्य** गुण कैसा है ? जन्म से ही ३ ज्ञान के धनी हैं, महाज्ञानी हैं, तो भी माता-पिता उन्हें पाठशाला भेजते हैं, तब प्रभु कहते नहीं है कि मुझे सब आता है, मुझे पढ़ने की जरूरत नहीं हैं । और

हमारी अगंभीरता कैसी ? हमें पता हो, ऐसी कोई बात गुरूदेव कहना शुरू करे तो तुरंत ही हम कह देते हैं कि यह मुझे पता है । संपूर्ण श्रुतज्ञानी, चौदह पूर्वधर, द्वादशांगी के रचयिता, प्रथम गणधर श्री गौतमस्वामी भी प्रभु जो देशना देते है, वह सबकुछ पता होने पर भी एकाग्रचित्त से मानो पहली बार सुन रहे हों, वैसे ही सुनते हैं । प्रभु के ऊपर यदि अनुराग हो तो जानी हुई बातें भी सुनने में आनंद आता है । संसार में एक ही पिक्चर को बार बार देखने वाले बहुत से लोग होते हैं, क्रिकेट मैच का रिप्ले भी देखा जाता है । छोटा बालक २ वर्ष का होता है - बोलना सिखता है, तब उसे कुछ आता नहीं है । "माँ-माँ" बोलता है, तो भी कितना आनंद आता है ? क्योंकि बालक पर राग है ! इसी तरह प्रभु पर अनुराग हो तो, प्रभु के वचन बार-बार सुनना अच्छा लगता है ।

❖ प्रभु के शरीर में ऐसी प्रचंड शक्ति है कि १ लाख योजन (३२ करोड मील) ऊँचे मेरुपर्वत को डंडा बनाकर आधी तिर्च्छालोक की पृथ्वी (जो असंख्य योजन लंबी-चौडी और १ लाख ८० हजार योजन मोटी है) को छाता बनाकर उल्टा कर सके । ऐसे परमात्मा ने संगम को फूंक मारी होती तो भी वह कहाँ जाकर गिरता ? तो भी प्रभु ने मात्र सहन करने के लिए ही, कर्म निर्जरा के लिए ही, संगम के सभी उपसर्गो को सहन किया । हमारी पूरी शक्ति हो कि आए हुए उपसर्गों को दूर कर सके तो भी मात्र कर्मनिर्जरा के लिए उपसर्ग सहन किये हो, ऐसे प्रसंग कितने ?

❖ प्रभु के हाथ से जो वरसीदान लेता है, वह भी भव्य है, ऐसा निश्चित हो जाता है । प्रभु की प्रतिमा पर जो फूल चढ़ाते हैं, वह भी भव्य जीव है ऐसा निश्चित हो जाता है । विहरमान प्रभु को जो भाव से वोहराता है, उसका ३ भव में मोक्ष निश्चित हो जाता है । ऐसा प्रभु का प्रभाव है ।

❖ प्रभु की माता को प्रसूति की कोई वेदना नहीं होती है । प्रभु जन्म के समय रोते नहीं हैं । आप और हम सभी रोते हैं, न रोए तो हमें रूलाया जाता है । जबकि प्रभु का जन्म भी आनंदमय हैं । प्रभु को कोई रोग उत्पन्न नहीं होता हैं । प्रभु जहाँ विचरते है वहाँ सवासौ योजन क्षेत्र में किसी को रोग हुआ हो तो वह भी नाश हो जाता है । ऐसा प्रभु का अतिशय है ।

❖ जिस तरह प्रभु का पुण्य प्रचंड है, प्रभु के गुण भी उत्कृष्ट है इसी तरह प्रभु के हमारे ऊपर उपकार भी अति महान हैं । परमात्मा का सर्वश्रेष्ठ उपकार है कि शुद्ध मोक्षमार्ग का दान परमात्मा ने हमें किया। कई धर्म के स्थापकों को मोक्ष क्या है ? यही पता नहीं है । कइं धर्म के स्थापक मोक्ष का मार्ग समजने में गलती कर बैठे हैं । बौद्ध कहते हैं – ''खाओ, पीओ, मजा करो; मोक्ष मिल जाएगा !'' यदि हमें प्रभु ने सच्चा मोक्षमार्ग न बताया होता तो, हम अनंतकाल तक संसार में भटकते ही रहते, कभी भी हमें मोक्ष नहीं मिलता । प्रभु ने कितना सुंदर सच्चा मोक्षमार्ग बताया है, यह जानते हैं तब हमारी खुशी का ठिकाना नहीं रहता है ।

❖ प्रभु ने सभी जीवों को उनकी कक्षा के मुताबिक मोक्षमार्ग बताया है, जो दूसरे धर्म में देखने को नहीं मिलता हैं । जिसकी जो भी योग्यता और शक्ति हो, वैसा मार्ग प्रभु शासन में हैं । मार्गानुसारिता की कक्षा में ७ व्यसन त्याग इत्यादि बताए हैं । श्रावक की कक्षा में बारह व्रत इत्यादि बताए हैं । साधु की कक्षा में महाव्रत, मूल–उत्तरगुण इत्यादि बताए हैं । इस तरह सभी को आगे बढ़ने के लिए मार्ग बताया है । वंकचूल को मात्र राजा की रानी के साथ परस्त्रीगमन नहीं करना, कबूतर का मांस नहीं खाना, ऐसी प्रतिज्ञाएँ गुरुभगवंत ने दी, जिससे वह मोक्षमार्ग पर चढ़ गया ।

❖ परमात्मा, हमें मिलनेवाले प्रत्येक सुख के मुख्य कारण हैं । (सर्वसंपत्ति

हेतु :) । क्योंकि सुख पुण्य से ही मिलता है, पुण्य धर्म से ही बंधता है और धर्म के उद्‌गमस्थान परमात्मा हैं । यदि परमात्मा ने धर्म की स्थापना नहीं की होती, तो हम धर्म का आचरण किस तरह करते ? पुण्य भी नहीं बंधता और सुख भी नहीं मिलता । परमात्मा की कृपा न मिले तो सच्चा शुभभाव कभी भी उत्पन्न नहीं हो सकता ।

❖ प्रभु ने मात्र 'निष्पाप जीवन जीना' इतना ही उपदेश नहीं दिया, बल्कि निष्पाप जीवन किस तरह जी सकते हैं, उसकी व्यवस्थित रूपरेखा बनाकर दी है । साधु जीवन के आचरणों का वर्णन शास्त्रों में पढते हैं तब पता चलता है कि एक भी पाप न लग जाए उसके लिए कितने सूक्ष्म रूप से सावधानी रखने की बात शास्त्रकारों ने बताई है ।

❖ प्रभु मात्र उत्सर्ग मार्ग बनाकर ही नहीं रुक गए, बल्कि उत्सर्ग का पालन न हो सके, तो अपवाद मार्ग के आचरण की छूट भी दी है । इतना ही नहीं, अपवाद का किस तरह आचरण करें, उसकी विधि भी सूक्ष्म से सूक्ष्म जानकारी के साथ बताई है । उत्सर्ग-अपवाद दोनों की देशना, मात्र प्रभु के शासन में ही है ।

उदाहरण - साधु को उत्सर्ग से रोज एकासणा करने का विधान है, पर असहिष्णुता के कारण नवकारशी करने की छूट दी है, इतना ही नहीं नवकारशी के लिए कब, किस तरह, क्या वोहरना, कितना - क्या, किस तरह वापरना यह सबकुछ बताया है । यह सभी जानने के बाद प्रभु की सर्वज्ञता में शंका नहीं रहती है । प्रभु की करूणा के प्रति गद्‌गद हो जाते हैं, और प्रभु के परम उपकार के प्रति हमारा सिर झुक जाता है ।



प्रभु भक्ति

❖ मार्ग का उपदेश प्रभु का प्रत्यक्ष उपकार है, तो प्रभु की भक्ति से जो भी फल मिलता है, वह प्रभु का परोक्ष उपकार है । क्योंकि इसमें प्रभु साक्षात् कुछ करते नहीं है, पर प्रभु के आलंबन से हमें शुभ भाव पैदा होते हैं, पुण्य बंधता है, और उससे फल मिलता है । इसमें भी प्रभु ही महत्व के निमित्त बनते हैं, इसलिये यह भी प्रभु का उपकार है ।

❖ महाज्ञानी, न्यायविशारद, बुद्धि के बादशाह कहे जाएँ, ऐसे, कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के बाद ९०० वर्ष में जिनके जैसे विद्वान शायद ही जिनशासन में हुए हैं ऐसे महोपाध्याय यशोविजयजी महाराज साहबने द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका (३२-३२) ग्रंथ में लिखा है "श्रुतज्ञान रूपी समुद्र का मंथन करके मुझे यही सार मिला कि प्रभु की भक्ति ही मोक्ष का कारण है।"

❖ भारी भरकम लकड़ी को बहुत सारे लोग मिलकर भी घसीट नहीं सकते। यदि इसी लकड़ी के नीचे पानी आ जाए तो एक छोटा बच्चा भी इसे धक्का देकर तैरा सकता है । इसी तरह मोक्ष की साधना अति कठिन है, हमारे लिए तो दुःशक्य है, परंतु प्रभुभक्ति रूप पानी आ जाए तो यह साधना बहुत सरल बन जाती है ।

❖ धर्म मार्ग में प्रवेश होता है तब जीव का सबसे पहला सुकृत होता है परमात्मा को भावपूर्ण नमस्कार ।

❖ प्रभु भक्ति में सभी कर्मों का क्षय करने की ताकत है । भक्तामर के रचयिता मानतुंगसूरिजी महाराज साहब की बेड़ियाँ प्रभु स्तुति करते करते टूट गई । हो सकता है कि निकाचित कर्म प्रभु की भक्ति से न टूटे, तो भी प्रभु की भक्ति से ऐसी सत्त्वशक्ति पैदा हो जाती है कि निकाचित कर्म के उदय से प्रतिकूल परिस्थिति पैदा हो जाए तो भी मन घबराता नहीं, स्वस्थता/समाधि टिकी रहती है ।

❖ परमात्मा हमको शरण देने के लिए, हमारा रक्षण करने के लिए तैयार है, पर शर्त यह है कि पहले हमने जिस पैसा परिवार इत्यादि की शरण ली है, उन सभी को छोड़ना पड़ेगा । अन्यथा शरणं नास्ति, यह पहले बोलना है, त्वमेव शरणं मम, यह बाद में बोलना है । तकलीफ यह है कि पैसे विगेरे छोड़ना नहीं है और फिर परमात्मा हमें शरण दे ऐसी इच्छा करते हैं । जीवन में जो आपत्ति आती है, तब भी पहले तो पैसा-पुत्रादि स्वजनों द्वारा ही आपत्ति दूर करने का प्रयत्न करते हैं, सभी निष्फल जाता है, तब अंत में परमात्मा को याद करते हैं ।

❖ 'उपमिति भवप्रपंचाकथा' नामक ग्रंथ में ग्रंथकार सिद्धर्षि गणि ने बहुत सुंदर तरीके से यह बात बताई है - भिखारी को कटोरे में जूठा अन्न मिला है, धर्मबोधकर गुरू उसे कहते हैं कि "यह जूठा अन्न फेंक दो तो अमृत दूँ ।" पर भिखारी को श्रद्धा नहीं है । वह कहता है कि "यह तो मेरा प्राण है, इसके बिना में क्या खाऊँ ? कैसे जीऊँ ? मैं इसको फेंक दूँ, फिर आप अमृत नहीं दो तो ? अथवा अमृत मुझे अच्छा नहीं लगे तो ? इसलिए इसे मैं नहीं फेंक सकता । आपको अमृत देना हो तो इसके अंदर ही दे दो ।" इस भिखारी जैसी ही दयनीय हालत आपकी भी है । संसार की सामग्री रूपी जूठा अन्न जीवनरूपी कटोरे में आपको मिला है । हम कहते हैं कि यह फेंक दो तो हम आपको सर्वविरति रूप अमृत देंगे । पर आप इसको फेंकने के लिए तैयार नहीं होते । और सर्वविरति रूपी अमृत पर आपको श्रद्धा नहीं है । "मुझे अच्छा नहीं लगा तो ?" ऐसी शंका होती है । इसलिए आप हमें कहते हो कि "हम पैसा-पुत्र-पत्नी-परिवार छोड़ नहीं सकते । आपको धर्म देना हो तो इसके साथ ही दो !" इसलिए जूठे अन्न के साथ ही हमें अमृत देना पडता है । देशविरति, छोटे-छोटे नियम रूपी धर्म देते हैं। करूणता तो आगे बनती है वह भिखारी जूठे के साथ दिया हुआ अमृत खाता है। इससे उसे स्वाद आता है, रोग थोड़ा कम होता है, थोडी

स्वस्थता आती है, सुख का अनुभव होता है । यह सभी प्रभाव है तो अमृत का, पर भिखारी को लगता है कि यह सब जूठे अन्न का प्रभाव है, इसलिए ज्यादा से ज्यादा जूठा अन्न खाता है । आपकी हालत भी ऐसी ही हैं। आपको संसार में जो भी सुख मिलता है, वह वास्तव में पूर्व में किए हुए धर्म का ही प्रभाव है, पर आपको लगता है कि संसार की सामग्री से ही सुख मिलता है, इसलिए ज्यादा से ज्यादा सामग्री एकत्रित करते हैं । कैसी करूण कथनी !

❖ प्रभु भक्ति का श्रेष्ठ लाभ तभी प्राप्त हो सकता है, जब प्रभु के प्रति आंतरिक प्रीति बहुमान छलक रहा हो । और जिसके हृदय में प्रभु के प्रति भक्ति छलक रही हो, वह प्रभुभक्ति में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ द्रव्यों का ही उपयोग करता है । आपके यहाँ कोई खास मेहमान आया हो, तो आप उसे अच्छी से अच्छी वस्तु खिलाते हैं, चावल भी बासमती बनाते हैं, थाली-कटोरी, आसन भी आलमारी से नए निकालते हैं । यदि प्रभु से मिलने की कीमत समझे हो, तो प्रभुभक्ति भी श्रेष्ठतम द्रव्य से ही करनी चाहिए ।

❖ यदि द्रव्य ऊँचा तो भाव भी ऊँचा... यह तो अनुभव सिद्ध हकीकत है । मेहमान को रोटी-दाल खिलाने में जो भाव आते हैं; उससे श्रीखंड, पूरी खिलाने में अधिक भाव आते हैं, यह सीधी सादी बात हैं । प्रभु की भक्ति में द्रव्य जितने ऊँचे होंगे, उतने ही भाव भी छलकते हैं, सादे फूल चढाने की अपेक्षा खुशबुदार सुगंधित, विविध वर्ण के फूल हों तो सहज ही भाव बढ जाते हैं । संसार के शक्तिसंपन्न व्यक्ति से मिलना हो तो अच्छी से अच्छी भेंट लेकर ही जाते हैं, उसी तरह प्रभु से मिलने जाते हैं, तो श्रेष्ठतम द्रव्य लेकर ही जाना चाहिए ।

❖ मंदिर में जिसे पत्थर दिखता है, वह नास्तिक है ।
मंदिर में जिसे प्रभु प्रतिमा दिखे, वह आस्तिक है,
मंदिर में जिसे साक्षात् परमात्मा दिखे, वह सच्चा प्रभुभक्त है ।

साक्षात् परमात्मा के दर्शन के स्वप्न से ही रोम-रोम खड़े हो जाते हैं, तो जिसको मंदिर में साक्षात् परमात्मा दिखते हैं, उसका हृदय भक्ति से कैसा उछलेगा ?

❖ परमात्मा की प्रतिमा का स्पर्श करने का अधिकार आबाल-वृद्ध सबको मिलता है, ऐसा सिर्फ जैन धर्म में ही है। कितने ही धर्म मूर्ति को नहीं मानते हैं। कई धर्म मूर्तिपूजा को भी नहीं मानते। कितने ही धर्म मूर्तिपूजा को मानते हैं, पर मूर्तिपूजा का अधिकार (Monopoly) सिर्फ पंडाओं और पूजारीयों को ही दिया गया है। जैनदर्शन मात्र ऐसा है, जहाँ कोई भी व्यक्ति प्रभु की पूजा कर सकता है। ऐसा सौभाग्य आपको मिला है, फिर भी प्रभुपूजा में यदि आप आलस करते हैं तो आप सुवर्ण अवसर को गँवा देते हैं।

❖ प्रभु की पूजा का मूल्य आपके मन में कितना है ? लाख-दो लाख मिलते हों तो भी जहाँ प्रभु का मंदिर न हो, प्रभु की पूजा के बिना रहना पडे, ऐसे स्थल पर धंधे के लिए तो नहीं जाते हैं ना ? ५-२५ हजार के सौदे के लिए, प्रभु पूजा का समय कम तो नहीं करते हैं ना ? करोड़ों रूपए की कमाई होती हो तो भी जहाँ महीनों-वर्षों तक प्रभुपूजा किए बिना रहना पडे, ऐसे विदेश में नहीं जाते हैं ना ? प्रभुपूजा की कीमत जिसके मन में करोडों रुपए से अधिक होती है, वह ऐसा कर ही नहीं सकता है। प्रभु की पूजा, कितना पुण्य बंधाती है ? अठारह फूलों की पूजा ने कुमारपाल को अठारह देश का राज्य दिलवाया। ऐसी पूजा को २-५ लाख रूपये के लिए छोड़ दें तो यह सौदा नुकसान का या फायदे का ?

❖ प्रभु की भक्ति करने वाले को प्रभु अपने जैसा ही बना देते हैं। प्रभु वीर के शासन में श्रेणिक, सुलसा, रेवती इत्यादि ९ श्रावक-श्राविकाओं ने तीर्थंकर नामकर्म बांधा हैं। दुनिया के किसी भी धर्म में यह बात नहीं है कि प्रभु भक्ति करते करते आप भी प्रभु बन जाओ। ज्यादा

से ज्यादा स्वर्ग की बात करते हैं। मात्र जैन धर्म में ही कहा है - "जिननी भक्ति करता करता जिन बनी जशो।"

❖ प्रभु की अष्टप्रकारी पूजारूपी भक्ति आप स्वयं ही करते हैं ना ? जो प्रभु की प्रतिमा भराने की, प्रतिष्ठा कराने की, ध्वजा चढाने का चढावा लाखों-करोडो रू. में आप लेते हैं, वही प्रभु की प्रतिष्ठा के बाद आप पूजारी को सौंप देते हैं। प्रभु की व्यवस्थित पूजा करने का समय भी श्रावक के पास नहीं होता है। यह कितना दुःखद है। आज कितने ही श्रावक ऐसे हैं, जिन्हें अष्टप्रकारी पूजा, अंगलुछने कैसे किये जाते है, यही नहीं आता है। प्रभु को अंगलुछने पूजारी करता हो तब प्रक्षाल या केसर पूजा का हजारों-लाखों का चढावा बोलने वाले बैठे बैठे बस देखते रहते हैं। यह दृश्य देखकर दुःख होता है, जो पूजा का लाभ है वही लाभ अंगलुछने का भी है। यह लाभ मुफ्त में मिलता है, तो भी क्यों किसी का मन नहीं होता ? पूजारी पेट के लिए पूजा करता है - उसे भगवान के प्रति कितना आदर, कितना प्रेम रहेगा ? यह प्रश्न है। ज्यादातर तो अनादर से कर रहा हो, ऐसे ही दृश्य देखने को मिलते हैं। इन सभी आशातनाओं का मूल कारण श्रावकों की निष्क्रियता है। यदि श्रावक स्वयं ही पूजा का कार्य संभाल ले तो ऐसी स्थिति आए ही नहीं। कितने ही मंदिर ऐसे भी हैं, जहाँ संपूर्ण पूजाविधि श्रावक ही करते हैं।

❖ तीन लोक के नाथ ऐसे प्रभु के अंगलुछने पीले पड़ गए हों, फट गए हों, चंदन के बदले लकड़ी घिसकर ही पूजा होती हो, धूप के स्थान पर धुँआ होता हो, यह लाखों-करोडोंपति श्रावकों के लिए शर्म की बात हैं। हर गाँव-शहर में एक-एक श्रावक, एक-एक वस्तु का खर्चा अगर उठा ले, तो कोई फंड करने का मौका ही न आए। पर पता नहीं क्यों ? प्रतिष्ठादि के रूप में प्रभुभक्ति में करोडों रूपये खर्च करने वाले श्रावकों को भी इस प्रकार की भक्ति करने का मन नहीं होता, प्रत्येकश्रावक यह

विचार करे कि प्रभु मेरे हैं और इनकी भक्ति मुझे करनी है तो यह समस्या आज ही खत्म हो जाएगी ।

❖ प्रभुभक्ति की पूजाओं में कई बार ऐसा होता है कि प्रभु की भक्ति, पूजा के द्रव्यों की उपेक्षा होती है, पूजा में बैठनेवाला कोई नहीं होता है और भोजन की व्यवस्था में ही सबका ध्यान होता है । मेहमानों की सार संभाल होती है । बहुत सारे लोग भोजन के लिये ही आते हैं । ऐसा लगता है कि भोजन ही मुख्य आयोजन है, पूजन तो सिर्फ नाम का है । खर्चा भी भोजन में पूजन से १०-२० गुना अधिक होता है । इसे जिनभक्ति महोत्सव कहना चाहिए या जनभक्ति महोत्सव ? ऐसे महोत्सव से पुण्य बंधता है या प्रभु कि होने वाली घोर उपेक्षा-अवहेलना रूप आशातना से पाप बंधता है, यह तो प्रभु ही जानते हैं । हर श्रावक को इतना तो तय करना ही चाहिए कि यदि वह पूजन करवाएगा तो मेहमानों की भक्ति से ज्यादा प्रभु की भक्ति को महत्व देगा । उसमें श्रेष्ठ द्रव्य लाएगा, पूरा समय उपस्थित भी रहेगा । इसी तरह दूसरे की पूजा में जाएगा तो स्वयं की खातिरदारी की अपेक्षा नहीं रखेगा और प्रभु की भक्ति श्रेष्ठ तरीके से हो, यही आग्रह रखेगा ।

❖ किसी लडकी का विवाह हुआ हो और उसका पति घर पर भोजन करने आया हो, तो उस समय बाजार से लाई हुई अच्छी से अच्छी मिठाई खिलाने में अधिक भाव होता है या स्वयं की बनाई हुई सादी मिठाई में ?

सभा : स्वयं की बनाई हुई मिठाई में ।

बस, यही बात प्रभु भक्ति में भी होती है । लगभग सभी की शिकायत है कि साहब, हम प्रभु भक्ति तो करते हैं, पर उसमें भाव नहीं आते हैं । इसका मुख्य कारण है कि आप तैयार द्रव्यों से ही आप पूजा करते हैं, इसीलिए भाव नहीं आते । प्रभु पूजा के सारे द्रव्य यदि स्वयं तैयार करें - केसर स्वयं घिसें, दीए की बत्ती स्वयं बनाएँ; तो पूरे समय मन

में यही भाव जगता है कि यह मेरे प्रभु के लिए है, और इन कारणों से आपके भाव उछलते जाते है। जैसे - पति के लिए भोजन बनाती हुई स्त्री के मन में, बेटे के लिए स्वेटर बनाती हुई माता के मन में निरंतर भाव रहता है कि यह मेरे पति के लिए है, मेरे बेटे के लिए है। प्रभु की पूजा की विधि स्नान से शुरू होती है, स्नान करते समय से ही मन में प्रभु के गुणों का गान, प्रभु की अद्‌भुत शक्ति, कठोर साधना इत्यादि का स्मरण शुरू हो जाता है तो प्रभु की पूजा करते समय भावोल्लास उछलेगा यह निश्चित है।

❖ प्रभु की भक्ति में महापुरुषों के रचे हुए स्तवन इत्यादि तो हम बोलते ही हैं, यह अच्छी बात है, पर समस्या यह है कि आपको इसका अर्थ लगभग पता ही नहीं है। इसलिए आपको इसके भावों का स्पर्श नहीं होता। प्रभु के साथ तन्मय होना है तो रोज आप स्वयं के शब्दों में भी जैसी आए वैसी प्रभु के साथ बात करें, प्रभु की महानता और अपनी अधमता की तुलना करें। प्रभु के पास गुणों की भीख मांगें, दोषों के नाश की प्रार्थना करें, आपको कुछ नया अनुभव होगा।

❖ साक्षात् परमात्मा हमें नहीं मिले, यह हमारा दुर्भाग्य है। प्रभु की प्रतिमा हमें मिली यह परम सौभाग्य है। इस सौभाग्य को छोड़कर संपत्ति के लिए विदेश जाने वाले मनुष्य दया के पात्र हैं।

❖ जो सुख के समय परमात्मा का स्मरण नहीं करता है, उसे दुःख के समय परमात्मा का स्मरण अच्छा लगे, यह बहुत कठिन है।



गुरूभक्ति

❖ परमात्मा को नमस्कार रूपी प्रथम मंगल करने के बाद, अपने गुरूदेव को नमस्कार रूपी दूसरा मंगल शास्त्रकार करते हैं ।

❖ परमात्मा का उपकार अनन्य है, लेकिन परोक्ष है । गुरू भगवंत का हमारे ऊपर साक्षात् उपकार है । प्रभु की वाणी को हम तक पहुंचानेवाले गुरू भगवंत है । प्रभु द्वारा स्थापित शासन हम तक पहुँचा, यह उपकार भी गुरू भगवंत का ही है । गणधर भगवंतों के गंभीर अर्थवाले शास्त्रों को सरल भाषा में हमें समझाने वाले गुरू भगवंत ही हैं । इसीलिए गुरुदेव भी परमात्मा के समान ही उपकारी हैं ।

❖ प्रभु की भक्ति प्रचुर कर्म निर्जरा कराती है यह सच है, लेकिन प्रभु मौन हैं । स्थापना निक्षेप के रूपमें मिले हैं । इसलिए अपने दोषों की ओर ऊँगली उठाएं, अपना हाथ पकड़कर सच्चे मार्ग पर ले जाएँ, ऐसा हो नहीं सकता । गुरू भगवंत जीवंत हैं, साक्षात् हैं इसलिए हमारे दोषों को सुधार सकते है । हमारा जीवन परिवर्तन कर सकते है, इस अपेक्षा से गुरूदेव का सत्संग जरूरी है ।

❖ अपेक्षा से, प्रभु प्रतिमा के दर्शन सुलभ हैं, पर पंचमहाव्रतधारी साधु के दर्शन दुर्लभ है । क्योंकि १४ राजलोक में प्रभु प्रतिमा असंख्य हैं, जबकि साधु-साध्वी भगवंत २००० करोड ही हैं । भारतवर्ष में प्रभु प्रतिमा की संख्या लाखों में है । जबकि साधु-भगवंत १०-१२ हजार ही है । इसलिए प्रभुभक्ति के अवसर की अपेक्षा गुरूभक्ति का अवसर दुर्लभ है । प्रभु के दर्शन पूजन आपकी जब इच्छा हो तब आप कर सकते हैं, हर रोज कर सकते हैं, पर गुरूदेव की भक्ति का लाभ आपकी इच्छा से नहीं मिल सकता । मुंबई के वालकेश्वर की बहुमंजिली इमारतो में ऊपर रहनेवालों को गुरुभक्ति का लाभ कभी नहीं मिलता, इसलिए नीचे के फ्लैटों के भाव ज्यादा होते हैं ।

❖ चारित्र लिए बिना मोक्ष होने वाला नहीं हैं, और चारित्र पाने के लिए, सत्त्व-उल्लास पैदा करने के लिए, चारित्रधर साधु-साध्वी भगवंतों के प्रति अपार भक्ति बहुमान अनिवार्य है ।

❖ १८००० साधु भगवंत को वंदन करने से कृष्ण महाराजा की ४ नरक टल गई । ७वीं नरक के बदले तीसरी नरक में गये इसलिए नरक के २६ सागरोपम के दुःख टल गए । अगर गिनती करें तो पता चलता है कि १ गुरूवंदन से लगभग १.५ लाख करोड पल्योपम के नरक के दुःख टले । इतनी ताकत १ गुरूवंदन की है (१ पल्योपम = असंख्य वर्ष)। ऐसा गुरूवंदन करने का नियम किसको है ? परमात्माके दर्शन पूजन का नियम तो अनेक लोगों को होता है, यह बहुत आनंद की बात है, पर मंदिर के पास ही उपाश्रय हो, उपाश्रय में साधु भगवंत विराजमान हो, इसकी जानकारी भी हो, तो भी दर्शन करने वालों में से १० प्रतिशत लोग भी गुरूवंदन नहीं करते । यह कितनी दुःखद बात है ? इतनी उपेक्षा का कारण क्या ?

❖ तीर्थों में यात्रा करने जाते समय प्रभु के दर्शन करते हैं, पर उपाश्रय में महात्मा हैं या नहीं इसका पता करते हैं ? यदि हाँ, तो वंदन करने जाते हैं ? आपके पास भोजन-सामग्री हो तो गोचरी के लाभ की विनती करते हैं ?

❖ जैसे शत्रुंजय, गिरनार स्थावर तीर्थ हैं, उसी तरह सुविहित संयमी मुनि भगवंत जंगम तीर्थ हैं । स्थावर तीर्थ की यात्रा कई बार करते हैं, परन्तु कभी ऐसा विचार आया कि जंगम तीर्थरूप संयमी, ज्ञानी, तपस्वी, प्रभावक महात्माओं के दर्शन के लिए निकलें ? इससे आपका सम्यग् दर्शन निर्मल होता है, हितशिक्षा मिलती है, संयम के प्रति आदर बढता है, चारित्र के अंतराय टूटते हैं । इत्यादि अनेक लाभ होते हैं ।

❖ यात्रा करने / घूमने या और किसी कारण से गाड़ी लेकर बाहर जाते समय रास्ते में विहार करते साधु-साध्वीजी भगवंत के दर्शन हों तो

गाडी खड़ी करके क्या आप वंदन करते हैं ? कामकाज का पूछते हैं ? यदि आपके पास नाश्ता आदि हो तो गोचरी पानी के लिए पूछते हैं ? कृष्ण महाराजा हाथी से उतरकर वंदन करते थे और आपका Schedule इससे भी अधिक टाईट है। संयमी के प्रति यदि आदर भाव हो, तो इतना तो कमसे कम होगा। यदि कभी किसी साधु-साध्वी भगवंत को रास्ते में कोई काम आ जाए तो आपको अनपेक्षित लाभ मिल सकता है। साधु-साध्वी भगवंत को देखकर भी जिसकी गाडी रूके नहीं वह श्रावक कैसे कहलाएगा ?

❖ घर पर साधु भगवंत पधारें तब भी अखबार छोड़ने का, टी.वी. छोड़ने का मन न हो, सोफे पर से उठे नहीं, बातचीत कर रहे हों तो उसे छोडे नहीं, ऐसे श्रावक को देखकर दुःख होता है, और करूणा भी उत्पन्न होती है। बेचारा-पुण्य बांधने की अवसर आया है तो भी पुण्य बांधने का मन नहीं होता ? रे, दुर्भाग्य !"

❖ छोटे बालक को जन्म के एक महीना होते ही परमात्मा के दर्शन करवाते हो, पूजा करवाते हो, उसके संस्कार भी देते हो, आदत डालते हो, यह बहुत अच्छी बात है। पर साथ में उपाश्रय जाना, गुरूभगवंत को वंदन करना, गोचरी पानी की विनती करना - यह सब संस्कार बहुत कम लोग देते हैं, यह बहुत दुःख की बात है। ऐसी उपेक्षा का क्या कारण है ? यह समझ में नहीं आता है।

❖ साधु भगवंत के दर्शन करने में कितनी ताकत है ? नटी को पाने के लिए रस्सी पर नाच रहे इलायचीकुमार को सामने खिड़की में गोचरी वोहरते हुए मुनि भगवंत के दर्शन हुए। सोलह शृंगार सजी हुई रूपवती कन्या मोदक वोहराने का आग्रह कर रही है। मुनि भगवंत की नजर नीची है, और वे मना कर रहे है। सामने देखने को भी तैयार नहीं हैं। यहाँ इलायचीकुमार को अपने आप पर धिक्कार हुआ। शुभभावों की धारा बह चली और केवलज्ञान तक पहुँच गए। उसका मूल क्या

था ? साधु भगवंत के दर्शन । तामली तापस को ६० हजार वर्ष के अतिघोर तप से भी जो सम्यक्त्व प्राप्त नहीं हुआ, वह एक मुनि भगवंत के दर्शन मात्र से ही मिल गया । लेकिन यह दर्शन फलता किसको है ? जिसको दर्शन अच्छा लगे, हृदय में आनंद की लहरें उछलती हो, विनय-बहुमान भक्ति हो; उसे ही ।

❖ साधु भगवंत घर पर पधारे हों, फिर भी जिसे सोफे पर से खड़े होने का मन नहीं होता हो, उसे सम्यक् दर्शन किस तरह माना जा सकता है ?

❖ नौकर को पानी वोहराते देखो, तो दौड़कर आपको भी वोहराने का, लाभ लेने का मन होता है ? आपके घर तो महात्मा कभी-कभी पधारते हैं । रोज सवेरे आयंबिल खाते से साधु-साध्वीजी भगवंत पानी वोहरते ही हैं । मुफ्त में मिलने वाला यह अमूल्य लाभ प्राप्त करने का मन किसे होता है ?

❖ कोई चीज आपके घर में हो, महाराज साहब को उसका खप भी हो, फिर भी आप वोहरा न सको (दूध फ्रीज़ में हो !) यह आपके जीवन की सबसे करुण घटना है ।

❖ आपके घर महात्मा आए हों, जिसका खप है ऐसी वस्तु होने पर भी (फ्रीज़ में होने के कारण) महात्मा वोहरे बिना वापस चले जाएँ, तो सच्ची श्राविका यही निर्णय करेगी कि ऐसा कभी भी फिर से नहीं हो इसकी पूरी सावधानी रखेंगे । आपके घर ऐसी घटना बारबार होती है, तो भी आपको पश्चात्ताप नहीं होता ? सुधरने का मन नहीं होता ?

❖ उपदेशमाला ग्रंथ में धर्मदासगणि महाराज साहब लिखते हैं कि भोजन करने से पूर्व श्रावक विचार करता है कि "आज महात्मा का लाभ मिला ?" यदि गांव में महात्मा न हों, तो गांव के बाहर जाकर तलाश करता है कि कोई महात्मा पधार रहे हैं क्या ? अगर पधार रहे हों, तो लाभ लेकर ही भोजन करने बैठें । मुझे आपसे यह पूछना है कि आप

रोज ऐसा विचार भी करते हो कि "आज महात्मा का लाभ मिले तो दिन सफल हो जाए" ? उपाश्रय में जाकर विनति करते हो ? भोजन करने से पहले पूछते हो कि लाभ मिला या नहीं ? यदि आप भावना करते हो, विनती करते हो, और महात्मा पधारते हैं तो विशेष लाभ मिलता है, पर यदि महात्मा नहीं पधारे तो भी आपको विशिष्ट पुण्यबंध/कर्मनिर्जरा दोनों ही हो जाते हैं। जीरण शेठ ने ४ महीने तक रोज प्रभु से विनती की। भावना प्रकृष्ट थी, परन्तु प्रभु नहीं आए, फिर भी कैसा लाभ पाया ? श्रावक की उत्कृष्ट गति १२वें देवलोक का आयुष्य बांधा। यदि देवदुंदुभि न बजी होती तो, उनकी भावों की धारा रुकती नहीं तो वह केवलज्ञान को भी प्राप्त कर लेते ! जबकि अभिनव शेठ के कोई भाव नहीं थे, तो साक्षात् प्रभु पधारे और वोहराया तो भी उन्हें कोई विशिष्ट लाभ नहीं हुआ ।

❖ जब कोई माता अपने पुत्र या पुत्री को दीक्षा देती है, तब इस विश्वास के साथ देती है, कि भारतभर की श्राविकाएँ आज से इसकी माता बनेंगी और इसका ख्याल रखेंगी। क्या आप इस विश्वास को सफल करते हो ?

❖ पुण्यशाली प्रभावक या परिचित महात्मा को वंदन करने का आपको मन होता हो, तो उसमें आपका पुण्य या आपका परिचय ही काम करता है, आपकी कोई विशेष पात्रता नहीं हैं। बिलकुल अपरिचित साधु या साध्वीजी भगवंत को देखकर आनंद हो "यह मेरे परमात्मा के मार्ग पर निकले हुए महात्मा !" उनके वंदन-भक्ति करने का उल्लास हो, तो आपकी पात्रता सही है ।

❖ उपाश्रय में बहुत सारे महात्मा विराजमान हों तब मुख्य आचार्य भगवंत को ही वंदन करके निकल जाते हो या सभी साधु भगवंत को वंदन करतो हो ? कभी ज्यादा ही जल्दी हो, सभी को वंदन करने का समय नहीं है, तो भी सभी साधु भगवंत के पास जाकर "मत्थएण वंदामि"

कहकर सुखसाता, कामकाज पूछने का समय तो निकालना ही चाहिए। जब तक सभी साधु भगवंतों के प्रति ऐसा बहुमान नहीं है, तब तक आपको संयम के भाव पैदा हो यह प्रायः असम्भव है ।

❖ जिसे इस भव में मिले साधु भगवंतों के प्रति थोडा भी बहुमान नहीं, साधु भगवंतों का संयोग मिलने का जरा भी आनंद नहीं, उसे भवांतर में साधु भगवंत के दर्शन भी मिलने की संभावना नहीं है । साधु के दर्शन नहीं होंगे तो जिनवाणी भी नहीं मिलेगी और फिर आत्मकल्याण का मार्ग तो निश्चित ही बंद हो जाएगा, दुर्गति में भटकना प्रारम्भ हो जाएगा, यह निश्चित समझ लेना । वर्तमान में जिन क्षेत्रों में साधु भगवंतों का विचरण नहीं जैसा है, या बहुत कम है, ऐसे राजस्थान, मध्यप्रदेश वगैरह क्षेत्रों के जैनों के जीवन में जैनत्व नाम का ही रह गया है । पूजा और वंदन करना भी नहीं आता है, भक्ष्य और अभक्ष्य का भी विवेक नहीं रहा है । महात्मा को किस तरह वोहराया जाए, इसकी भी जानकारी नहीं होती, यह सबकुछ मैंने देखा है, ऐसा जैनत्व मिला तो भी किस काम का ? अगर भवांतर में जिनवाणी चाहिए तो इस भव में मिले साधु भगवंतों के प्रति अपार बहुमान रखना ही पड़ेगा। वर्तमान काल में संसार में अपार संक्लेश और विराधना है, फिर भी इन सभी के बीच भी जिसके हृदय में प्रभु भक्ति और साधु भगवंत के प्रति बहुमान हो वह इस संसार से तर जाता है ।

❖ एक साधु भगवंत की भक्ति भी यदि उल्लास से करे, तो उसे अढाई द्वीप में रहे हुए २००० करोड साधु भगवंतों की भक्ति का लाभ मिलता है। ऐसा चौदह पूर्वधर श्रुतकेवलि भद्रबाहुस्वामी महाराजने कहा है । इतना ही नहीं - भूतकाल में हुए और भविष्य काल में होनेवाले सभी महात्माओं की भक्ति का भी लाभ मिलता है ।

❖ इस तरह एक भी साधु भगवंत का अनादर करे / तिरस्कार करे / निंदा करे, तो उसे अढाईद्वीप के सभी साधु भगवंतों के अनादर का पाप

लगता है ।

यदि एकाध साधु में दोष दिखाई दे तो उसके कारण संपूर्ण साधु संस्था को बुरा कहना - "सभी साधु भगवंत ऐसे हो गए हैं" ऐसा बोलना, इसके जैसा अधम कृत्य और कुछ नहीं है । महामिथ्यात्व बंधने वाला हैं, भवोभव साधु भगवंत नहीं मिले, ऐसा पाप बंध जाता है । साधु भगवंत भी साधना करके वीतराग बनने के लिए निकले हैं । वीतराग होकर साधु नहीं बने हैं । इसलिए उनमें भी छोटे-बड़े दोष होते ही हैं, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । (न हो तो आश्चर्य है ।) इसलिए ऐसे दोष दिखाई दे तो भी उनकी निंदा तो नहीं ही करनी चाहिए ।

❖ गुरू शिष्य को कठोर शब्दों में डांटते हो, तो यह दृश्य देखकर "गुरू बहुत कड़े मिज़ाज के हैं, उनका क्रोध भयंकर है," ऐसा अवर्णवाद करने का मन होता है । पर शिष्य नतमस्तक है, सुन रहा है, यह देखकर भी शिष्य की क्षमा अद्‌भुत है, सहनशीलता प्रचंड है, ऐसी अनुमोदना का मन क्यों नहीं होता ?

❖ शास्त्रकार कहते हैं कि जिस गच्छ में गुरू शिष्य के सारणा-वारणा-चोयणा, पडियचोयणा न करता हो, उस गच्छ में साधु को नहीं रहना चाहिए ।

सारणा - याद कराना ।

वारणा - गलत काम से रोकना ।

चोयणा - कठोर शब्द में डांटना ।

पडिचोयणा - दण्ड देना ।

❖ सम्यक्त्व के ६७ बोल की सज्झाय में महोपाध्याय श्रीयशोविजयजी महाराज ने कहा है कि साधु भगवंत में कोई अवगुण हो और आपको दिखते हो तो भी उसे दूसरों को दिखाना नहीं चाहिए, बल्कि ढकना चाहिए । यह सम्यक्त्व का आचार है ।

❖ योगदृष्टि समुच्चय ग्रंथ में तार्किक शिरोमणि हरिभद्रसूरीश्वरजी महाराज साहब कहते हैं कि चरमावर्त में प्रवेश हुआ हो ऐसा जीव, साधु भगवंत के मिले हुए योग को प्रायः दर्शन, वंदन, भक्ति, जिनवाणी श्रवण द्वारा सफल ही करता है ।

❖ गोचरी, पानी, वस्त्र, पात्र इत्यादि वोहराने में जो लाभ है, उससे अनेक गुना लाभ, साधु भगवंत को रहने के लिए जगह, जिसे शास्त्रीय भाषा में वसति अथवा शय्या कहते हैं, देने में है । कारण यह है कि उस जगह में रहकर साधु भगवंत जो आराधना करते हैं - स्वाध्याय, तप-प्रतिक्रमण कायोत्सर्ग-जाप-गोचरी-प्रवचन आदि, उन सभी का लाभ जगह देने वालों को मिलता है । साधु भगवंत को शय्या (रहने की जगह) देकर जो तर जाए उसे शय्यातर ऐसा शास्त्रकारों ने नाम दिया हैं । साधु भगवंत के लिए शय्यातर उपकारी कहा है । रोज सबेरे शय्यातर को निश्चित रूप से याद करना ही पड़ता है, ऐसी हमारी क्रिया है । विचार करो - शय्यातर कितना भाग्यशालीहोता है, कि रोज उसका नाम आचार्यादि साधु भगवंत याद करते है । गोचरी पानी वोहराने का आपका उल्लास तो प्रचंड होता है । पर कभी आपके मकान में रहने के लिए साधु-साध्वी भगवंत जगह की मांग करे तो आपका उल्लास कैसा होगा ?

❖ देरासर में प्रभुभक्ति एक ही आराधना होती है । उपाश्रय में कितनी आराधनाएँ होती हैं ? स्वाध्याय भी होता है, प्रतिक्रमण भी होता है, व्याख्यान भी होते हैं, लाखों-करोडों के चढावे भी होते हैं सात क्षेत्र, जीवदया, अनुकंपा के कार्य भी होते हैं, दीक्षा होती है, बड़ी दीक्षा भी होती है, पदवी होती है, सामायिक होता है, पौषध होता है, गच्छाधिपति आचार्य भगवंत आदि सभी की आराधना होती है । इन सभी का लाभ उपाश्रय बनवाने वाले को मिलता है । विचार करो की उपाश्रय बनवाने वाले को कितने सुकृतों की कमाई होती है । प्रत्येक श्रावक को अपने

जीवन में स्वद्रव्य से एक उपाश्रय बनवाने की भावना रखनी चाहिए। इतनी शक्ति न हो तो संघ के उपाश्रय में यथाशक्ति लाभ लेने का उल्लास तो अवश्य होना चाहिए ।

❖ जैनेतर को जैन साधु के दर्शन से ज्यादा, जैन साधु के आचार को जानकर बहुत आदर होता है । आश्चर्य से आँखें फाड़कर देखते हैं, ऐसा बहुत बार अनुभव हुआ है, ऐसे अद्‌भुत जैन साधुके आचार हैं । ऐसे साधु भगवंत के दर्शन आपको जन्म से मिले हैं, यह आपका प्रचंड पुण्योदय है, पर आपको इसका आनंद है सही ?

❖ जैसे साधु भगवंत महान्‌ हैं, वैसे ही साध्वीजी भगवंत भी महान्‌ हैं। कई बार ऐसा देखने को मिलता है, कि साधु भगवंत की अपेक्षा साध्वी भगवंत ज्यादा तप-आराधना इत्यादि करती हैं, अधिक प्रतिकूलता सहन करती हैं । फिर भी दुःख की बात यह है कि संघ साधु भगवंतों की जितनी देखरेख करता है, उतनी साध्वीजी भगवंत की देखरेख नहीं करता । उनके प्रति ऐसा आदर, बहुमान, भक्ति देखने को नहीं मिलते। तब ऐसा कहने का मन होता है कि ऐसे संयोगों में जो साध्वीजी भगवंत की भक्ति भावपूर्वक करता है, वह अधिक पुण्यबंध करता है और अधिक लाभ कमाता है ।

❖ साधु भगवंत के व्रत, 'बड़े' हैं, इसलिए 'महाव्रत' कहलाते हैं। श्रावक के व्रत 'छोटे' हैं इसलिए 'अणुव्रत' कहलाते हैं ।

❖ साधु भगवंत का पहला महाव्रत है - सर्वथा प्राणातिपात विरमण महाव्रत । श्रावक का पहला अणुव्रत है - स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत । इस तरह दोनों में एक ही शब्द का फर्क है, पर अर्थ में बहुत फर्क है । साधु भगवंत सभी जीवों की हिंसा का सर्वथा त्याग करते हैं। श्रावक, स्थावर जीवों (पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति) की हिंसा का संपूर्ण त्याग नहीं कर सकता है ।

❖ वर्तमानकाल में गृहस्थ के जीवन में जो हिंसा हो रही है, उसका कोई हिसाब ही नहीं हैं । संबोधसित्तरी ग्रंथ बतलाता है, कि पानी के प्रत्येक जीव का आकार यदि सरसों के एक दाने जैसा हो, तो पानी की एक बूँद में रहे हुए जीव, करोड़ों माईल चौडे जंबूद्वीप में नहीं समा सकते है । यह जानने के बाद पानी का उपयोग आप कम करते हैं सही? यदि अनिवार्य रूप से पानी का प्रयोग करना ही पड़ता हो, तब जीवहिंसा हो रही है, उसका ख्याल/पश्चात्ताप होता है सही ? कई बार ऐसा होता है कि श्रावक हमारे साथ विहार में आया हो / गोचरी के लिए घर बताने आया हो, रास्ते में अगर कहीं पर पानी हो, तो श्रावक हमें कहता है, "साहब, यहाँ पानी है, आप उधर से पधारो ।" और खुद उसी पानी पर चलता है ! पानी पर साधु भगवंत चले तो जीवहिंसा होती है, पाप लगता है, यह पता है । तो श्रावक पानी पर चलता है, तो हिंसा नहीं होती क्या ? पाप नहीं लगता क्या ? जब कभी आप पौषध करते हैं, तब कच्चे पानी को छूने में भी पाप लगता है, यह समझते हो । तो फिर कम से कम जहाँ बच सकते हो, वहाँ पानी की हिंसा से बचने की कोशिश क्यों नहीं करते ? नल से पानी बह रहा हो, तब जीवों का बहाव बह रहा है, ऐसी कल्पना करो तो जीवहिंसा से बचने का प्रयास हो सकता है ।

❖ जीवदया की उत्कृष्ट परिणति जिसे आत्मसात् हुई है, ऐसे साधु भगवंत, नींद में करवट लेने से पूर्व शरीर और संथारे को रजोहरण से पूंज लेते हैं ।

❖ 'सर्वथा मृषावाद विरमण महाव्रत' यह साधु भगवंत का दूसरा महाव्रत है । भूल से भी झूठ न बोल दे, इसका ध्यान साधु भगवंतों को रखना पड़ता है । आपका घर नीचली मंजिल पर हो और ऊपरी मंजिल पर हम गोचरी वहोर रहे हैं और आप विनती करो कि, "साहब हमारे घर पधारना" तो हमें यही जवाब देना पड़ता है कि "वर्तमान जोग"

मतलब कि खप होगा, अनुकुलता होगी तो आऊँगा।'' हाँ, आता हूँ'' ऐसा नहीं कह सकते हैं। क्योंकि अचानक कोई ऐसा कारण आ जाए जिसकी वजह से आपके घर वहोरे बिना ही जाना पडे तो जो पहले कहा 'हाँ, आता हूँ' - वह गलत होता है और इससे मृषावाद का दोष लगता है।

❖ जिनशासन में सत्य की अद्‌भुत व्याख्या की गई है। 'सच' सत्य नहीं है, बल्कि जो जीवों का हित करनेवाला हो, वही सत्य है, ऐसी व्याख्या शास्त्रकारों ने की है। अर्थात् सच होते हुए भी जीव के लिए जो अहितकर हो, तो वह सत्य नहीं है, और गलत होने पर भी हितकर हो तो वही सत्य है। कायोत्सर्ग में खड़े साधु के पास से दौड़ता हुआ हिरण जाए, फिर शिकारी आकर पूछे कि 'हिरण किस दिशा में गया ?' यहाँ सच बोले तो हिरण का शिकार हो जाएगा, जीवहिंसा होगी, तो अगर साधु ने देखा हो, तो भी वह बोलेंगे ''मुझे पता नहीं, मेरा ध्यान नहीं था'' इत्यादि। यह बात गलत होते हुए भी जीव को हितकर होने से सत्य है। धन में बहुत कुछ खरीदने की ताकत है। यह बात सच है। पर यह हितकर नहीं है। हितकर तो यही है कि संपत्ति चंचल है, नाशवंत हैं।

❖ साधु को क्या बोलना ? क्या नहीं बोलना ? यह सिखाने के लिए दशवैकालिक सूत्र में पूरा ७वाँ अध्ययन-वाक्य शुद्धि नाम का है।

❖ 'एक भी चीज/वस्तु उसके मालिक से मांगे बिना न लेना' यह साधु का तीसरा सर्वथा अदत्तादान विरमण महाव्रत है। राख या सूखा घास भी मांगे बिना नहीं ले सकते। रास्ते में से कोई चीज लेनी हो, उसका कोई मालिक न हो तो भी 'अणुजाणह जस्सुग्गहो' कहकर उस क्षेत्र के अधिष्ठायक देवता की आज्ञा लेकर ही वह वस्तु ले सकते है - यह साधु का आचार है।

❖ किसी भी स्त्री का स्पर्श नहीं करना, ऐसा-चौथा "सर्वथा मैथुन विरमण महाव्रत" नाम का महाव्रत है । इस महाव्रत के लिए शास्त्रकारों ने बहुत जोर दिया है । और उसकी रक्षा के लिए नव वाड बताई हैं । जिस मकान में स्त्री के चित्र हों, उसमें भी रहने का साधु को मना है । स्त्री के फोटो के सामने नजर पड़े तो मानो सूर्य के सामने नजर पडी हो और आंख बंद हो जाए, इस तरह नजर खींच लेने का शास्त्रकारों ने बताया है ।

❖ 'सर्वथा परिग्रह विरमण महाव्रत' यह साधु का पाँचवा महाव्रत हैं । बिना आवश्यकता के एक भी वस्तु रखनी नहीं और वस्त्र, पात्र इत्यादि जो भी जरुरी वस्तु रखनी पड़े, उस पर भी ममत्व भाव रखना नहीं यह इस महाव्रत का भाव है । पूर्वकाल में पातरे रंगने के बाद उसे सूखाने के लिए फूटे हुए घडे का कंठ वहोर के लाते थे । पातरा सूख जाए, फिर ये कंठ परठ देने का शास्त्रकारों ने कहा है । वहाँ प्रश्न किया कि मान लो दूसरे दिन फिर से पातरा रंगना हो तो उसके लिए कंठ चाहिए हो, तो रख लें तो ? तब शास्त्रकार ने मना किया है, और कहा है कि दूसरे दिन दूसरा कंठ लाओ, पर पहले दिन का दूसरे दिन रखना नहीं । उसमें भी परिग्रह का दोष लगता है, तो दूसरी चीजों का तो प्रश्न ही कहाँ ?

❖ मोहनीय कर्म का हमेशा के लिए जिसने क्षय किया है, जिसे विकार का स्पर्श हो ऐसी सम्भावना भी नहीं है, ऐसे तीर्थंकर परमात्मा को भी जब कोई अज्ञात स्त्री चरणस्पर्श करने जाए, तो उसका स्पर्श न हो जाए, उसके लिए पैर वापस खींच लेते हैं । शुद्ध व्यवहार का पालन वह भी करते हैं ।

❖ आप कितना/कितनी बार झूठ बोलते हो ? धंधे में आपको माल २५ रूपये में पड़ा हो, आपको ग्राहक को ३५ रूपये में बेचना हो और ग्राहक ३० रूपये में मांगे, तो आप क्या जवाब देते हो ?

सभा : घाटा लगेगा ।

आप इस समय झूठ बोल रहे हैं, यह आपको पता है ? आप यह कह सकते हैं कि "मुझे ३० रुपये में बेचना नहीं है । मेरा भाव ३५ रुपये ही हैं" इत्यादि । पर आपको झूठ बोलने की आदत हो गई है । भयंकरता तो यह है कि यह झूठ है, पाप है, इसका आपको ख्याल भी नहीं हैं । और इसलिए प्रायश्चित और पश्चात्ताप की कोई सम्भावना ही नहीं रहती है ।

❖ वर्तमान काल में अन्य धर्म के संन्यासियों के सामने नजर करो तो पता चलेगा, कि जैन साधु भगवंत जो हमें मिले हैं, यह हमारा कितना बड़ा सौभाग्य है । जैनेतरों को भी अपने संतों के ऊपर इतनी श्रद्धा नहीं होगी, जितनी जैन साधुओं पर होती है यह अनुभव सिद्ध हकीकत है । हमें ऐसे साधु भगवंत के दर्शन-भक्ति का लाभ जन्म से ही मिला है, यह हमारा कितना बड़ा अहोभाग्य है ?



जिनवाणी

❖ पहले परमात्मा को नमस्कार किया, फिर गुरुदेव को नमस्कार किया। अब परमात्मा की वाणी रूपी श्रुतदेवता को नमस्कार करके तीसरा मंगल करते हैं ।

❖ प्रभु के दर्शन मंगलरूप लगते है, साधु भगवंत के दर्शन मंगलरूप लगते हैं, यह तो अच्छा है । पर प्रभु के वचन कोई सुनाए, तो 'यह अच्छा मंगल हुआ', 'शुकन हुआ' ऐसा मानते हो सही ? दुकान पर ग्राहक आया हो, तब आपका लड़का याद कराता है, "पिताजी, भगवान ने अनीति करने का, लूट-कपट करने का मना किया है" तो क्या आप इसको शुकन मानते हो ?

❖ जैन धार्मिक गृहस्थ को श्रावक कहा गया है, इसका अर्थ होता है जिनवाणी को सुनने वाला । यह बताता है कि जिनवाणी का श्रवण यह श्रावक का प्रधान कर्तव्य है ।

❖ जैसे प्रभु की और गुरू भगवंत की भक्ति द्वारा उपासना करनी है, वैसे ही प्रभु और गुरू की आशातना से भी बचना है । और इसी तरह जिनवाणी की भी उपासना करनी है, और जिनवाणी की आशातना से भी बचना है । विधिपूर्वक जिनवाणी का श्रवण यह आपकी प्रथम आराधना है... विधि में समय पर आना, गुरुवंदन करना, उचित स्थान पर बैठना, हाथ जोड़कर / विस्मित चेहरे से सुनना, सुनकर तहत्ति करना इत्यादि आता है । आप जिनवाणी रसपूर्वक सुनते हैं, यह तो आनंद की बात है, पर इसकी संपूर्ण विधि का पालन करते हैं ? सबसे पहले - व्याख्यान में समय पर आते हैं ? एक बात समझ लें कि विधिपूर्वक श्रवण हो, तो ही जीवन में उसका सच्चा परिणाम देखने को मिलता है । बहुत से लोग शिकायत करते हैं कि व्याख्यान सुनते

हैं, पर जैसा चाहिए वैसा परिणाम जीवन में देखने को मिलता ही नहीं है । इसके बहुत सारे कारणों में से एक कारण यह है कि श्रवण की विधि का पालन नहीं होता है । देर से आना यह अविधि है । और इस अविधि से जिनवाणी की आशातना भी होती है । हाँ, जो लोग जिनवाणी सुनने आते ही नहीं है, उनसे तो जो देर से भी आते हैं वे अच्छे ही है । अवसर मिलने पर भी जो जिनवाणी को नहीं सुनते, वे जिनवाणी का अंतराय बांधते है । पर जो कारण के बिना, मात्र लापरवाही से "जाते हैं - क्या जल्दी हैं ?" ऐसी उपेक्षा के भाव से हर रोज व्याख्यान में देर से आते हैं, तो वे भी इस अनादर के कारण अंतराय बाँधते हैं । प्रभु के प्रत्येक वचन में अद्भुत ताकत है, अनंतानंत संसार के परिभ्रमण का अंत लाने की क्षमता प्रत्येक प्रभुवचन में है, तो ऐसे एक भी वचन हम कैसे छोड़ सकते हैं ? इसकी सही कीमत समझने वाला कभी इसे छोड़ सकता है क्या ?

❖ लगभग असाध्य माना जाने वाला रोग आपको हुआ हो, किसी भी दवा से ठीक नहीं हो रहा हो, सभी थैरेपियाँ-एलोपेथिक, होमियोपेथिक, नेचरोपेथिक, आयुर्वेद को अजमा लिया हो, फिर भी निष्फलता मिली हो । उस समय कोई प्रसिद्ध डॉक्टर जो इसका ही इलाज करता हो, उसकी जानकारी मिले... अरे, एक मरीज को इसके इलाज से ठीक भी हो गया, ऐसा पता चले, तब आप क्या करेंगे ? वह डाक्टर चाहे कितना भी दूर हो, चाहे कितना भी पैसा लेता हो, चाहे कितनी भी लंबी लाईन लगती हो, चाहे कितना भी समय लगाता हो, तो भी आप जायेंगे या नहीं ? और वह जो कुछ भी कहे, उसे कितना ध्यानपूर्वक सुनेंगे ? प्रभु के वचन तो अनंतकाल से लगे भवरोग को दूर करने वाले हैं, जो दूसरे सबसे असाध्य है, ऐसे प्रभुवचन मिलते हो, तो जिसे भव अर्थात् संसार रोग लगता हो उसका नाश करनेकी, उससे मुक्त होने की तीव्र इच्छा हो, तो कितनी भी कीमत देकर, कितने भी समय का भोग देकर

समयपर सुनने जायेगा, एक भी वचन छोडेगा नहीं । प्रभुवचन सुनने की ऐसी उत्कंठा है ?

❖ सारे जगत से स्वार्थ की ही बातें जानने को मिलती हैं । आपकी आत्मा के हित की बात करने वाला यदि कोई इस जगत में है, तो मात्र सद्गुरु ही हैं । ऐसे सद्गुरु का योग हो, तो समझदार व्यक्ति जिनवाणी का श्रवण छोड़ेगा ?

❖ समकित के ६७ बोल में ३ लिंग बताए गए हैं । जिसमें पहला लिंग है शुश्रूषा, अर्थात् जिनवचन सुनने की इच्छा । शास्त्रकार बतलाते हैं कि नवयुवक पुरुष हो, उसके साथ रूपवती पत्नी हो, और किन्नरों का दिव्य संगीत सुनने में जो आनंद आता है, उससे भी अधिक आनंद समकिती को जिनवचन सुनने में आता है । ऐसा आनंद यदि हमें नहीं आता हो, तो हमारे अन्दर सम्यक्त्व है या नहीं इसमें शंका है ।

❖ जिनवचन सुनने में आनंद आता है या नहीं, यह बात दूर रखिए । पर जिनवचन सुनाने वालों के ऊपर आप गुस्सा तो मत करो, उसके ऊपर अप्रीति न हो, जिनवचन का अनादर तो नहीं ही हो, यह तो निश्चित है ना ? यदि कभी आपने कोई सुकृत किया हो, आपका बहुमान हुआ हो और उसके अभिमान में आप फूले नहीं समा रहे हों, उस समय भरी सभा में आपसे कोई कहे कि इस तरह अहंकार करके आप सुकृत को बेच रहे हैं, आपका पुण्य समाप्त हो रहा है, तो क्या आपको अच्छा लगेगा ? आपको उसके ऊपर अप्रीति तो नहीं होगी ना ?

सभा : हमारे हित की बुद्धि से कोई जिनवचन कहे तो नहीं होगी, लेकिन हमारा अपमान करने के लिए कहे तो होगी ।

यदि कोई सोने के सिक्के से आपको मारे तो आप क्या करते हैं? ले ही लेते हैं ना ? आपको लगी तो भी यह नुकसान छोटा है, पर १०-१२ हजार रुपये की कीमत का सिक्का मिला तो यह बड़ा लाभ है । यही आप सोचते हैं । इसी तरह आपका अपमान किया तो यह नुकसान

मामूली है, इहलौकिक है, पर आपको बहुत बड़े परलौकिक नुकसान से बचाता है, ऐसे अमूल्य वचन वे आपको दे रहे हैं, क्या ऐसा आप सोच नहीं सकते ?

सभा : पर उस व्यक्ति में भी वही दोष हो, जो हमारा अपमान करे, यह कैसे सहन हो सकता है ?

डॉक्टर स्वयं ही रोगी हो, फिर भी वह आपके रोग का निदान करता है । यह आप स्वीकारते हो, उसकी दी हुई दवाई लेते हो और उससे अच्छा भी हो जाता है, तो डॉक्टर का उपकार मानते हो, भले ही खुद भी रोगी हो । फिर सामने वाला व्यक्ति भले ही दोषी हो, वह हमें हमारा दोष ढूँढकर बताता है । इससे हमारे अपने दोषों का नाश करने में सहायता मिलती है, तो फिर उसका उपकार हम क्यों नहीं मानेंगे ?

❖ वाचना देनेवाले आते हैं, उसके पहले वाचना लेनेवाले सभी को हाजिर होना पड़ता है, देर से आने पर प्रायश्चित आता है यह आपको पता है ?

❖ वाचना की विधि का पालन ज्ञानावरणीय का क्षयोपशम कराता है । बहुत बार ऐसा होता है कि शास्त्रों के जो पदार्थ आसन पर बैठकर ५ बार पढ़ने से भी समझ में न आया हो, वह पदार्थ गुरूदेव के पास जाकर, वंदन करके, वायणा संदिसाहु इत्यादि आदेश मांगकर पढ़ने से समझ में आ जाता है । ऐसा क्यों होता है ? यह समझ में न आने पर मैंने गुरुदेव से पूछा तो गुरूदेव ने सुंदर समाधान दिया – 'आप वंदनादि के द्वारा गुरू का विनय करते हो, वाचना की विधि करते हो, तो इससे आपके ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षयोपशम होता है, और इस कारण से आपको पदार्थ समझ में आ जाता है ।'

❖ जिनवचन मात्र सुनने से कल्याण होने वाला नहीं है । सुनने के बाद, उसे याद रखना, उसका पुनरावर्तन करना जरूरी है – अनिवार्य है । बहुत से लोगों की शिकायत होती है कि 'साहब, व्याख्यान में आप

जो समझाते हैं, वह सबकुछ सच लगता है, करने जैसा लगता है, पर संसार में जाने के बाद उन सभी बातों का वाष्पीभवन हो जाता है ।' इसका मुख्य कारण है कि आप प्रवचन सुनते हो, पर उसके पदार्थों का पुनरावर्तन नहीं करते, उसे याद रखने की मेहनत नहीं करते । उदाहरण - गुरू भगवंत ने क्रोध न करने के लिए व्याख्यान में प्रेरणा की हो, क्रोध के भयंकर विपाकों को समझाया हो, तब आपको लगता है कि अब जिंदगीभर क्रोध नहीं करना है । पर जब आप दुकान जाते हो, और वहाँ कोइ प्रतिकूल घटना घटती है, तो आप अपने आप पर काबू नहीं रख पाते हैं, गुस्सा आ ही जाता है । ऐसा क्यों होता है ? शास्त्रकार बताते हैं कि कोई भी कार्यसिद्ध होने का मूल, दृढ प्रणिधान-संकल्प है । आपको क्रोध से मुक्त होना हो तो निरंतर आपको अपने आपको आदेश देना पड़ता है कि आपको क्रोध नहीं करना है । इसके भयंकर विपाक निरंतर याद करने पड़ते हैं, तो जैसे ही निमित्त आएँ तब आपको उसके भयानक फल याद आते हैं और आप क्रोध से बच जाएँ ऐसा हो सकता है । परंतु आपका प्रणिधान यदि ढीला है, सतत् आप अपने आप को याद नहीं करवाते हैं, तो जब भी निमित्त आता है, तब आपकी संज्ञा प्रबल बन जाती है और गुस्सा आ जाता है । इसलिए जिनवचन सुनने के बाद बार बार याद करना, उसके ऊपर चिंतन करना जरूरी है, तभी इस जीवन में लाभदायक बनता है ।

❖ व्याख्यान किसलिए सुनते हो ? यदि निश्चित रूप से आत्मकल्याण की, दोषनाश की, गुणप्राप्ति की इच्छा हो, तो मात्र सुनने से काम नहीं चलेगा, उसे याद रखना पडेगा, अमल में लाना पड़ेगा । यदि मात्र हाजरी भरने के लिए ही सुनते हो - ‘‘मैं व्याख्यान सुनता हूँ,’’ ऐसा लोगों को दिखाने के लिए ही आते हो, तो दूसरा कोई फायदा होनेवाला नहीं है ।

❖ आपकी एक तकलीफ यह है कि जिसे पाने के लिए आपको मूल्य देना

पड़ता है, उसकी कीमत आप पूरी तरह से वसूल करते हैं, और अमूल्य ऐसे जिनवचन मुफ्त में मिलते है, ऊपर से सुनने पर प्रभावना भी मिलती है, तो भी आपको इसमें रस नहीं हैं ।

❖ रोहिणीया चोर के पिता ने पुत्र से वचन लिया था कि जिंदगी में कभी भी प्रभु वीर की वाणी सुननी नहीं । काले चोर को भी परमात्मा के वचन पर कैसी दृढ़ श्रद्धा होगी ? कि यदि मेरा पुत्र उनकी वाणी सुनेगा तो चोरी छोड ही देगा । आपको प्रभु वचन पर इतना विश्वास-श्रद्धा है ? और हुआ भी ऐसा ही - समवसरण के पास से जाते हुए रोहिणीया ने स्वयं के दोनों कानों में ऊंगली डाल दी, जिससे भूल से भी भगवान का उपदेश सुनाई न दे । अब उसी समय उसके पैर में काँटा लगा ! वैसे तो प्रभु का अतिशय है कि प्रभु के आसपास की पृथ्वी में काँटे उल्टे हो जाते हैं, किसी को नहीं लगते, पर रोहिणिया चोर का कल्याण होने वाला था, इसलिए ही उसे काँटा लगा । काँटा निकालने के लिए एक कान में ऊँगली रखकर, दूसरे कान में से ऊँगली निकाल कर काँटा निकाला । उस वक्त भगवान के सिर्फ ३ वचन सुने। आगे जाने पर इन ३ वचनों ने ही उसकी जान बचाई जिससे उसके जीवन में परिवर्त्तन हुआ ।

❖ समुद्र में लकड़ी आपको तार सकती है, पर आपको पकड़नी पडती है। प्रभु के वचन संसार से आपको तार सकते हैं, पर आपको इसे पकड़कर रखने पड़ते हैं ।



अंतराय

❖ विघ्ननाश के लिए मंगल किया जाता है, यह आपने देखा। पर विघ्न क्यों आते हैं ? इसका शास्त्रकार जवाब देते हैं' श्रेयांसि बहुविघ्नानि' आपकी भाषा में "अच्छे कार्य में सौ विघ्न।"

❖ बहुत बार ऐसे प्रश्न उठते हैं कि जब अच्छा कार्य करने जाते है, तो कितने सारे विघ्न आकर खड़े हो जाते हैं, और खराब कार्य करने में कोई बीचमें नहीं आता, इसका कारण क्या ? इसका सर्वप्रथम कारण यह है कि भूतकाल में हमने दूसरों के अच्छे कार्य में विघ्न बहुत किए हैं, सहायता कम की है, इसलिए हमारे अच्छे कार्य में भी विघ्न आते हैं। इसलिए यदि हमें अपने सत्कार्यों को निर्विघ्न पूरा करना हो, तो दूसरों के सत्कार्यों में विघ्न करना बंद करके, सबकी सहायता करनी शुरू करना चाहिए।

❖ हमारी एक भी आराधना पूर्ण करने के लिए, हमें कितने लोगों की सहायता की जरूरत पड़ती है ? यदि हम दूसरे लोगों की सहायता की अपेक्षा रखते हैं, तो हमारा यह फर्ज बनता है कि हमें भी दूसरों की सहायता करनी चाहिए।

❖ हमें यदि दूसरों की आराधना में सहायता करना अच्छा नहीं लगता हो, हमारी ही आराधना करनी अच्छी लगती हो, तो इसका मतलब यह हुआ कि हमें 'आराधना' अच्छी नहीं लगती; सिर्फ 'मेरी आराधना' ऐसे ममत्व के छापवाली आराधना ही अच्छी लगती है। और ऐसी ममत्व वाली आराधना कभी शुद्ध धर्म नहीं हो सकती। अध्यात्मसार में महोपाध्याय यशोविजयजी महाराज ने बताया है कि जिस आराधना-धर्मक्रिया से ममत्व (मोह का अधिकार) चला गया हो, वही अध्यात्म है-मोक्षमार्ग है।

❖ हम बहुत कम आराधना कर सकते हैं, क्योंकि हमारी शक्ति और आयुष्य सीमित है। उससे अधिक आराधना करने की हम प्रेरणा कर सकते हैं। बहुत सारे आराधकों की हम सहायता कर सकते हैं। जबकि अनुमोदना तो तीन लोक के, तीन काल की सभी आराधनाओं की हो सकती हैं। इसलिए करण-करावण-अनुमोदन तीनों का क्षेत्र उत्तरोत्तर व्यापक बनता है।

❖ शक्ति / अनुकूलता / उल्लास न होने के कारण आराधना नहीं भी हो सकें, फिर भी आराधना के प्रति आदर भाव हो तो सम्यक्त्व टिकता है। जो दूसरों की आराधना में सहायता-अनुकूलता न करे, उसका सम्यक्त्व टिकना प्रायः असंभव है। और दूसरों की आराधना में जान बूझकर विघ्न खड़ा करे, उसमें सम्यक्त्व होना प्रायः असंभव है।

❖ सहायकभाव यह साधु भगवंत का मुख्य धर्म है। नवपद की पूजा में कहा गया है "सहायपणुं धरता साधुजी"। पंचाशक की टीका में अभयदेवसूरीश्वरजी महाराज साहब ने बताया है साधु की सहायता करना, यह ब्रह्मचर्य की वाड़ है।

❖ स्वयं आराधना करे वह मुख्यतः स्व-उपकार है, दूसरों की आराधना में सहायता करे, वह स्व-पर उभय को उपकार करता है। इसलिए अपेक्षा से स्वयं आराधना करने से दूसरों को आराधना में सहायता करने में में ज्यादा लाभ है। जैसे कि पढ़ने से ज्यादा पढ़ाने में लाभ है।

❖ जो दूसरों की हमेशा सहायता करते हैं, उन्हें सबसे पहले यह लाभ होता है कि वह लोकप्रिय बनता है, सभी उसको बुलाते हैं।

❖ जिसे अपनी आराधना विघ्नरहित बनानी हो, उसे दूसरों की आराधना में कभी भी विघ्न खड़ा नहीं करना चाहिए।

दूसरों की आराधना में विघ्न आए, तो आनंदित नहीं होना चाहिए। यथाशक्ति सहायता करनी चाहिए अंततः अनुमोदना तो करनी ही

चाहिए।

❖ आप तो किसी की आराधना में विघ्न खडा नहीं करते हो ना ? या किसी की आराधना में विघ्न खडा होता है, तो आनंद तो नहीं होता है ना ? आपकी दुकान का नौकर जैन हो, उसे चौविहार करना हो, तो आप अनुकूलता करते हो या नहीं ? आपके कुटुंब में पत्नी, पुत्र आदि को तपश्चर्या / उपधान / नवाणुं करने का मन हो, तो अपने स्वार्थ के कारण तो ना नहीं करते हो ना ? थोड़ा कष्ट सहन करके भी उसकी आराधना का उल्लास बढाते हो ना ? कोई दीक्षा लेने वाला हो, और आपके पास सलाह लेने आए, तो क्या बात करते हो ? दीक्षा कितनी कठिन है, आज के साधु कैसे हैं इत्यादि; जिससे उसका उल्लास कम हो, ऐसी बातें करते हो; या संसार में कुछ भी अच्छा नहीं है - साधुजीवन ही श्रेष्ठ है, ऐसी जिससे उसका वैराग्य और मजबूत बने ? किसीने अट्ठाई करने की भावना की और आपने मना किया 'रहने दे भाई, तेरी शक्ति नहीं है' और फिर भी उसने जिद करके शुरू कर दी; चौथे दिन ढीला पडा और पारणा करना पडे; अब आप उसे क्या कहेंगे ? "देखा ! मैं तो पहले से ही कह रहा था कि तेरी शक्ति नहीं है !" यही या और कुछ ? यानि उसकी अट्ठाई न हुई, आपकी बात सच पडी, इसका ही आनंद हुआ ना ? शांति से आत्मनिरीक्षण करने से पता चलता है कि हम दूसरे की आराधना में सहायता करने के लिए तैयार नहीं होते हैं, कभी अंतरायभूत बनते हैं तो कभी उसकी आराधना पूर्ण हो ऐसी इच्छा हमारी नहीं होती । ये सारे भाव हमें अंतराय कर्म बंधाते हैं, जिससे हमारी आराधना में विघ्न आते हैं ।

❖ शाहपुर तीर्थ की प्रतिष्ठा के प्रसंग पर साधु भगवंतों की वाचना में एक बार हमारे गच्छाधिपति गीतार्थ मूर्धन्य पू. आ. भगवंत जयघोषसूरीश्वरजी महाराज साहब ने साधुओं को सहायता करने की प्रेरणा की । तब एक साधु भगवंत ने पूछा - "फिर पढ़ाई कब करें ?" तब साहबजी ने बहुत

मार्मिक जवाब दिया "जिसे सहायता करने के कारण पढ़ने का समय ही न मिले, उसे पढ़ने की जरूरत ही नहीं है, सीधा ही उसे केवलज्ञान हो जायेगा ।"

❖ शुभकार्य करते समय जिस कार्य के प्रति आलस, अनादर आए, "यह कार्य कब जल्दी पूरा होगा" ऐसा भाव आ जाए, तो इस अनादर से भी अंतराय कर्म बंधते हैं ।

❖ आराधना करनी ही नहीं, और आराधना के प्रति आदर भी नहीं; वह तो बहुत बड़ा गुनाह है । पर आराधना करते हुए भी उसके प्रति आदर न करे, तो वह भी गुना तो है ही ।

❖ साधना की सच्ची ताकत, उसके पीछे रही भावना ही होती है । इसी प्रकार आराधना की सच्ची ताकत उसके प्रति आदरभाव में होती है । जिसके पास आदरभाव है, वह कभी संयोगवश आराधना नहीं कर सके, तो भी आराधना से होने वाला लाभ उसे मिलता है । योगदृष्टि समुच्चय में पू. हरिभद्रसूरिश्वरजी महाराज साहब ने बताया है कि जिज्ञासा-पढ़ने की इच्छा हो, पर कभी सामग्री-संयोग इत्यादि की अनुकूलता के अभाव में पढ़ नहीं सके तो भी सतत् ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है और जब सामग्री-संयोग मिलते हैं, तब एक साथ ज्ञान भी मिल जाता है ।

❖ जीरण शेठ की प्रभु को वहोराने की भावना थी, लेकिन वहोराने का लाभ नहीं मिला, तो भी पुण्यबंध तो हुआ ही ।

❖ सामाचारी प्रकरण में महोपाध्याय यशोविजयजी महाराज साहब ने कहा है कि एक साधु भगवंत, दूसरे साधु भगवंत को गोचरी आदि का लाभ देने की विनती करे, परन्तु यदि दूसरे साधु भगवंत इन्कार करें, तो भी उन्हें कर्म निर्जरा का लाभ तो मिलता ही है ।

❖ आप जब भी दानादि सत्कार्य करते हैं, तो उल्लास से करते हैं या करना पड़ता है, इसलिए करते हैं ? करना तो है ही, तो उल्लास से करने

से अनेक गुणा लाभ होता है, विपुल कर्मक्षय होता है, प्रचुर पुण्य बंधता है। जबकि अनादर-आलस से करने पर अंतराय बंधती है। संघ में पानड़ी हो, तो आगे बढ़कर उल्लास से लिखाते हो, कि लिखाना पडे, उसका इंतजार करते हो ? कभी आपको लिखवाना हो और उसके पहले ही पानड़ी पूरी हो जाए, तो "वाह ! मैं बच गया" ऐसा आनंद का भाव होता है या "हाय ! मैं रह गया, मुझे लाभ न मिला" ऐसे अफसोस का भाव होता है ?

❖ दान करने का जिसे उल्लास होता है, वह अवसर खोजता ही रहता है। जैसे ही सुअवसर मिलता है वह तुरंत आगे रहकर रकम लिखा देता है, कोई कहे इसकी राह वह नहीं देखता है।

❖ सत्कार्य में उल्लास पैदा करने के लिए, सत्कार्य से होने वाले लाभ को नजर के सामने रखना पड़ता है। पैसा मिलने से होने वाला लाभ सामने दिखता है, इसलिए पैसा कमाने के लिए कितना भी कष्ट भोगने का उल्लास पैदा हो जाता है। इसी प्रकार जिसको धर्माराधना में पुण्यबंध-निर्जरा का लाभ दिखता है, उसकी धर्माराधना में उल्लास अवश्य पैदा होता है।

❖ सुकृत करने के बाद उसका पश्चात्ताप करे, तो सुकृत द्वारा बांधा हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है, अनुबंध अशुभ होता है, और अंतराय कर्म बंधता है।

❖ आप सुकृत करने के पीछे पश्चात्ताप तो नहीं करते हो ना ? कभी कोई साधर्मिक आपके पास मांगने आया, उसकी बात आपको सच लगी, आपको उसके प्रति करूणा पैदा हुई और आपने उसकी सहायता की। बादमें आपको समाचार मिले कि उस व्यक्ति ने आपको ठग लिया है, तो आपने जो शुभभाव से उसकी सहायता की उसका पछतावा तो नहीं करतो हो ना ?

सभा : पर वह हमें ठग कर चला गया, उसे जरूरत नहीं थी, तो भी हमने उसे दिया तो गलत किया, ऐसा भाव तो होता ही है ?

आपने दान क्यों किया था ? दान देने के पीछे आपका आशय क्या था ? पुण्यबंध का, कर्मनिर्जरा का, भवांतर में सद्गति / सुख की प्राप्ति का, करूणा गुण को विकसित करने का / जीवंत रखने का.. बराबर ? और यह लाभ तो दान करने से आपको मिल ही गया । सामने वाले व्यक्ति ने आपको ठगा हो, तो भी यह लाभ आपके पास से जाता नहीं है, तो फिर आपने गलत किया, ऐसा अफसोस क्यों ? उल्टा आप अफसोस करते है, तो उस कारण से आपके ये सारे लाभ चले जाते है - आप सब गँवा देते है । एक बात समझ लो कि किसी भी धर्मराधना का मुख्य फल गुणविकास, कर्मनिर्जरा, पुण्यबंध है ; और यह तो शुद्ध/शुभ आशय से आराधना करने वाले को मिलता ही है । परोपकार तो गौण फल है, और यह कभी न भी मिले तो भी मुख्य फल में कोई फर्क नहीं पड़ता है । उल्टा गौण फल न मिलने के कारण जो सुकृत किया है उसका अफसोस किया, तो मुख्य फल भी नहीं मिलता है, इसलिए किसी भी आराधना का कभी भी अफसोस नहीं करना चाहिए । यदि कहीं कोई निष्फलता मिली हो, तो उसमें से पाठ सीखना चाहिए और भविष्य में अधिक सावधानी रखनी चाहिए । पर जो किया उसका अफसोस कभी नहीं करना चाहिए।

सभा : हमने दान दिया हो और उस रकम का कोई दुरुपयोग करे, तो फिर हमें तो अफसोस होगा ही ना ?

वह दुरुपयोग करेगा ही, यदि यह पता हो, तो उसे कुछ देना ही नहीं चाहिए । लेकिन हमारे शुभ आशय से देने के बाद कोई दुरुपयोग करे, तो उसमें हमें कोई नुकशान नहीं है ।

सुना हुआ एक प्रसंग - बोक्सिग की स्पर्धा में चैम्पियन बने हुए किसी बोक्सर को बड़ा ईनाम मिला और उसी वक्त एक बुढिया उससे मिलने

आई और कहा - "मेरी लड़की को केन्सर है, उसकी देखरेख करने के लिए पैसे की जरूरत है पर मैं बहुत गरीब हूँ। बोक्सर ने तुरंत अपने सेक्रेटरी से कहा "इन्हें २००० डॉलर दे दो।" सेक्रेटरी को कुछ ठीक नहीं लगा, उसने सोचा कि पूरी तलाश किए बिना उसे कैसे दे सकते हैं ? फिर भी बॉसने कहा इसलिए दे दिए। ३-४ दिनों के बाद सेक्रेटरी ने बॉस से कहा - "बॉस, आपने जिस बुढिया को २००० डॉलर देने का कहा था, वह तो ठग है, आपको ठग कर चली गई, मैंने पूरी खबर निकाली है ? उसकी लड़की को केन्सर नहीं हैं।" तब बॉस ने कहा : "मैंने उस बुढिया को २००० डॉलर इसलिए ही दिए थे कि उसकी लड़की को केन्सर हो, तो सार-संभाल करके उसे ठीक कर सके। तुम यह समाचार लाए कि उसकी लड़की एकदम ठीक है, उसको केन्सर है ही नहीं - यह तो बहुत आनंद के समाचार हैं। मुझे कोई ठग गया, इस दुख से तो उसे केन्सर नहीं है इस समाचार से मैं ज्यादा आनंदित हूँ !" जब कभी हमें कोई ठग लेता है, तब हम भी ऐसा विचार क्यों नहीं कर सकते ? इससे हमारा बांधा हुआ पुण्य अक्षत रहता है, अनुबंध शुभ होता है और दुर्ध्यान नहीं होता है।

❖ कई बार किए गए सत्कार्य की कोई भी कद्र नहीं करता है, कोइ उसकी खबर तक नहीं लेता, तो हमें ऐसा लगता है कि "मेरा किया गया कार्य व्यर्थ गया", और हम उसका पश्चात्ताप करते हैं, वास्तव में अच्छा काम किया है तो भी। उपाश्रय में दान क्यों देते हो ? उपाश्रय में होने वाली सामायिक, प्रतिक्रमण, व्याख्यानादि अनेक आराधनाओं का लाभ मिलता हैं इसलिए। यदि आपने उपाश्रय में कोई बड़ा दान दिया हो और आपका नाम उपाश्रय के बाहर मुख्य दाता के रूप में लिखने का निश्चित हुआ हो। नाम लिखा गया लेकिन पेड़ की डाली बीच में आ जाने से रास्ते में आने-जाने वालों को आपका नाम पढ़ा नहीं जा रहा है तो फिर आपका भाव कैसा होगा ? उपाश्रय में बहुत आराधना

होती हो, उस लाभ का आनंद या नाम छिप गया उसका अफसोस ? आपने किसी को आपत्ति में बहुत सहायता की हो, वह व्यक्ति बाद में आपके उपकार को भूल जाए, और आपके प्रति कृतज्ञता रखना तो दूर, पर उल्टा अपकार करता हो, तब आप भूतकाल में की गई सहायता के लिए अफसोस करते हो ? यदि करते हो, तो आपका बांधा हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है। आपने उसकी जो सहायता की थी, वह आपको पुण्यबंध हो इत्यादि लाभ के लिए, या उसका जीवन स्वस्थ और समाधिमय बने, इसके लिए। और वह कार्य तो हुआ ही है, फिर अफसोस - "मैंने व्यर्थ सहायता की, मुझे नहीं करनी चाहिए थी" क्यों ? जब सहायता की, तब मात्र स्व-परोपकार का शुद्ध आशय था, बदले की कोई अपेक्षा नहीं थी। तो अब क्यों ऐसे बदले की अपेक्षा खड़ी करते हो ?

❖ मम्मण ने पूरे उल्लास के साथ साधु भगवंत को सिंह केसरी मोदक वोहराया। प्रखर पुण्य बांधा, जिससे रत्न के बैल बना सकते हैं, इतनी संपत्ति मिली। पर पडोसी ने उसे कहा, "अरे ! ऐसा मोदक तो जिंदगी में कभी न मिले, ऐसे स्वाद से भरपूर था, ऐसा मोदक वोहरा दिया ?" और बस मम्मण को किए हुए सुपात्र दान पर अफसोस हुआ और मोदक वापस मांगने गया। साधु भगवंत ने परठ दिया। पर दान के अफसोस के कारण मम्मण के जीव ने जो अशुभ अनुबंध बांधा, उस कारण मम्मण के भव में धन के ऊपर तीव्र आसक्ति हुई। अरबों की संपत्ति होने पर भी तेल, चावल खाना, तेज सर्दी में बर्फ जैसे ठंडे पानी में जाना और नदी में तैरने वाली चंदन की लकड़ी खींचकर लाना। मात्र इस मूर्च्छा के पाप से सातवीं नरक में रवाना हो गया। मम्मण की दुर्गति का मूल - सत्कार्य का पश्चात्ताप और उसका कारण अकल्याण मित्र जैसे पड़ोसी की संगति है ! यदि पड़ोसी ने उल्टा, सुपात्र दान करने का धन्यवाद दिया होता तो वह शुभ अनुबंध बांधकर

उत्कृष्ट फल पा सकता था । इसीलिए पंचसूत्रकार ने बताया है कि "अकल्याणमित्र की संगति कभी नहीं करनी चाहिए ।"

❖ आपको भी कभी कोई ऐसी बात कहे, ऐसे समाचार दे, जिसके कारण आपको अपने किए गए सुकृत पर पछतावा हो, तो उसे उसी समय बता दो कि ऐसे समाचार सुनने से कोई लाभ होने वाला नहीं है । इसी तरह किसी ने कोई सुंदर सुकृत किया हो, तो उसे कोई ऐसा समाचार मत दो जिससे उसे अपने सुकृत पर पश्चात्ताप हो । ऐसे समाचार उसे देना जरूरी नहीं हैं । दूसरों का कल्याणमित्र बनना बहुत मुश्किल है, पर कम से कम किसी की आत्मा का अहित हो, ऐसी बात करके उसका अकल्याणमित्र तो नहीं ही बनना है, ऐसा आपको निश्चित करना ही चाहिए ।

❖ व्याख्यान के लिए बहुत मेहनत करने पर भी कभी व्याख्यान का कोई परिणाम श्रोता में देखने को नहीं मिलता, तो भी हमें कोई अफसोस नहीं होता है, क्योंकि भले ही श्रोता में कोई परिणाम देखने को नहीं मिला, हमें स्वाध्याय, कर्मनिर्जरा, भवांतर में जिनवचन की प्राप्ति इत्यादि रूप लाभ तो मिलता ही है । वाचकप्रवर उमास्वातिजी महाराज ने तत्वार्थसूत्र की कारिका में कहा है कि श्रोता पर अनुग्रह बुद्धि से जो बोले उसको तो एकांत लाभ ही होता है ।

❖ सुकृत करने के बाद उसकी प्रशंसा होने से अभिमान होता है, जो सुकृत के फल को खत्म करने वाला होता है । रत्न की कीमत करोड़ों रूपए की हो, परन्तु बेचने वाला उसे १ लाख रूपये में बेचना चाहता हो तो उसे १ लाख रूपये ही मिलते हैं । सुकृत की ताकत सद्गति -परमगति देने की है, पर यदि आपको इसके बदले में प्रशंसा ही चाहिए तो प्रशंसा ही मिलती है, फिर सद्गति-परमगति नहीं मिलती ।

❖ जिसको आत्मप्रशंसा की भूख होती है, उसे लोक में अच्छा दिखने के लिए धर्म में मिलावट करने की इच्छा होती है । वह शुद्ध धर्म नहीं

कर सकता । शुद्ध धर्म की आराधना के लिए लोकसंज्ञा, लोकप्रशंसा की इच्छा से मुक्त होना ही पड़ता है ।

❖ आत्मप्रशंसा की भूख सभी गुणों का नाश कर देती है, यह बहुत बड़ा दोष है ।

❖ स्वयं की प्रशंसा में फूले नहीं समाना, इसका अर्थ है मोहराजा के सैन्य के सामने खतरनाक युद्ध खेलकर प्रचंड पराक्रम से जीते हुए गुणरूपी खजाने को मोहराजा के चरण में भेंट कर देना !

(पू. पंन्यास श्री मुक्तिवल्लभविजयजी महाराज साहब का चिंतन)

❖ सीढ़ी नीचली मंजिलवाले को ऊपर चढ़ाती है, और ऊपरी मंजिलवाले को नीचे उतारती है । हमारे गुणों का दूसरे यदि आलंबन लेते हैं तो वह उनको ऊपर चढाते हैं, गुणवान बनाते हैं, और अगर हम स्वयं ही उसका आलंबन लें तो वे हमें नीचे गिराते हैं, हमारा पतन कराते हैं।

❖ जब हमें अपने किसी भी सुकृत / गुण का अभिमान होता है, तब उस क्षेत्र में अकल्पनीय सिद्धि प्राप्त करने वाले महापुरूषों को याद करना चाहिए, इससे हमारा अभिमान खत्म हो जाता है । किसी को एक दिन में १०० गाथा कंठस्थकरने का अभिमान होतो बप्पभट्‌टसूरि महाराज साहब को याद करें - जो रोज की १००० गाथा कंठस्थ करते थे, इससे अभिमान नष्ट हो जाता है । पूर्वकाल के ही नहीं, वर्तमानकाल के भी प्रत्येक क्षेत्र में अद्‌भुत पराक्रम करने वाले साधु-साध्वीजी भगवंत-श्रावक बिराजमान हैं ही, उन्हें याद करने से भी अपना अभिमान खत्म हो जाता हैं ।

❖ सिद्धितप करने वाले सभी के नाम की घोषणा हो और हमारा ही नाम घोषित न हो, तब हमारे मन की हालत कैसी हो जायेगी ? आपके मन में प्रशंसा की इच्छा है या नहीं, उसकी परीक्षा उसी समय होती है ।

❖ जिसे प्रशंसा की भूख होती है वह सुकृत का आनंद कभी भी अनुभव नहीं कर सकता, निरंतर उसे लोगों का अभिप्राय जानने की इच्छा होती

है । एक भी व्यक्ति निंदा करे या प्रशंसा न करे, तो भी उसके सुकृत का पूरा आनन्द समाप्त हो जाता है । वह दुःखी हो जाता है । जिसे सुकृत में ही रस है, वह दूसरों की चिंता किए बिना स्वयं के सुकृत में ही आनंद मनाता है ।

❖ जिसे प्रशंसा की इच्छा होती है, उसे खुशामद करने वाले चारों ओर से घेर लेते हैं और अपने स्वार्थ को पुष्ट करते रहते हैं । उसकी भूल दिखाने वाले / सुधारने वाले कल्याणमित्र तो उससे दूर ही चले जाते हैं, क्योंकि भूल सुधारने वाले उसे कभी अच्छे नहीं लगते ।

❖ एक बात समझ लो कि हम छद्मस्थ हैं, हमारे अन्दर दोष है ही । यदि इन दोषों को निकालना है, भूलों को सुधारना है, तो दोषो/भूलों को बताने वाले को अपना मित्र बनाना पड़ेगा, उन्हें बुलाना पडेगा, उन्हें उपकारी मानना पड़ेगा, उनका आभार मानना पड़ेगा । जिसे भूल बताने वाला / दोष बतानेवाला स्वयं का मित्र नहीं लगता, शत्रु लगता है, उसका आध्यात्मिक विकास रुक जाता है ।

❖ हमें अपनी प्रशंसा की इच्छा नहीं करनी चाहिए और दूसरों की प्रशंसा करने में कंजूसी नहीं करनी चाहिए ।



प्रयोजन

❖ मंगल करने के बाद ग्रंथकार, ग्रंथ की रचना करने के पीछे उनका हेतु क्या है, उसे कहते हैं । उसे प्रयोजन भी कहते हैं ।

❖ बुद्धिमान व्यक्ति, कभी भी प्रयोजन के बिना काम नहीं करता और जो करे तो वह बुद्धिमान नहीं है । वर्तमान काल का चित्र बिल्कुल अलग है । ज्यादातर बहुत लोग जो करतें है, वही आप भी करते हो, आगे-पीछे का विचार ही नहीं करते । ऐसे में आपको बुद्धिमान कैसे कहा जा सकता है ?

❖ पूर्व के समय में जो भी रीति-रीवाज थे, उन सभी के पीछे कोई न कोई विशेष प्रयोजन था । गाँवों में दही से घी बनाने के बाद जो छाछ बचती थी, उसे बेच नहीं सकते । अगर ज्यादा हो, तो जो मांगने आए उसे मुफ्त में ही देनी पडे ऐसी दृढ मान्यता थी । आज भी गाँवों में ऐसी मान्यता है । जिसके कारण छाछ मुफ्त में गरीबों को मिलती थी, जो पोषण देती थी, और यदि सिर्फ रोटी बना ले तो, रोटी और छास खाकर पेट भर सकते थे, ऐसी सुविधा थी ।

आज डेरी आ गई, घी बनना बंद हुआ, छाछ गई, हजारों गरीबों की छाछ गई । ऐसी कई बातों की गहराईयों में उतरने से पता चलता है, कि उसके पीछे कितने गंभीर रहस्य थे और पूर्व के पुरूषों की बुद्धि को सलाम करने का मन हो जाता है ।

❖ विवाह, यह एक स्त्री के अलावा जगत् की सभी स्त्रियों का जीवनभर त्याग करने की प्रतिज्ञा है, और इस त्याग की अनुमोदना के लिए बहुमान रूप भेंट देते थे । जिससे धर्म की अनुमोदना होती थी । अब, इस रहस्य को नहीं जानने वाले भेंट देते हैं, तो भी इस भाव का स्पर्श नहोने के कारण कोई भी लाभ को प्राप्त नहीं कर सकते ! (गुजराती में ऐसी भेंट को 'चांल्ला' कहते हैं ।)

❖ समान क्रिया होने के बावजूद भी भावना के आधार पर कर्मबंध बिलकुल अलग हो, ऐसा हो सकता है। चाय ठंडी हो जाए तो टेस्ट नहीं आयेगा, इसलिए चाय को गरम रखने के लिए ढक करके रखें, तो इसके पीछे स्वाद की आसक्ति का भाव होने से पाप बंधता है। और अगर गरम चाय खुली हो, तो उसमें जीव गिरने पर मर जायेंगे, उसकी रक्षा के लिए चाय ढक करके रखे तो जीवरक्षा का भाव होने से पुण्य बंधता है।

❖ ग्रंथ की रचना के पीछे ग्रंथकार के अलग अलग बहुत सारे प्रयोजन होते हैं। एक प्रयोजन है, स्वयं की स्मृति की रक्षा का। वे खुद जो कुछ पढ़ते हैं, उसका ग्रंथरचना से पुनरावर्तन होता है, अनुप्रेक्षा होती है। इस कारण स्वयं की भी पदार्थों के प्रति समझ दृढ होती है, ज्यादा गहरी होती है, यह भी महत्त्व का लाभ है।

❖ दूसरे को पढ़ा सके, तो ही खुद का पढ़ा हुआ सार्थक कहलाता है।

❖ दूसरा एक और प्रयोजन होता है, श्रोता / वाचक पर उपकार करना। स्वयं को जो ज्ञान मिला है, उसे दूसरे योग्य-भव्यजीवों को देने से, उनको भी मोक्षमार्ग बताने का, दर्शन-ज्ञान-चारित्र में वृद्धि करने का परम उपकार ग्रंथ द्वारा होता है।

❖ जगत के सभी जीवों का समावेश चार भावनाओं में करना है।

(१) सभी जीवों के हित की चिंता करना। सभी अपना आत्मकल्याण करके, मोक्षसुख के भागी बने, ऐसी भावना, यह पहली मैत्री भावना है।

(२) जो गुणवान जीव हैं, उनके गुणों को देखकर आनंदित होना, ईर्ष्या नहीं करनी, यह दूसरी प्रमोद भावना है।

(३) जो दोषी जीव हैं, उन्हें दोष से मुक्त करवाने की, गुणवान बनाने की भावना यह तीसरी करूणा भावना है।

(४) जो कुपात्र जीव हैं, जिनमें सुधरने की योग्यता ही नहीं हैं, उनकी उपेक्षा करना, तिरस्कार नहीं करना यह माध्यस्थ्य भावना है।

❖ सामने वाले जीव में पात्रता है, और हमारे में शक्ति है, हमारा पुण्य हो, तो उसे सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए, अन्यथा हमारी करूणा भावना टूटती है । इसलिए ग्रंथकार अपनी करूणा भावना को अक्षत रखने के लिए लोगों पर उपकार करने के लिए ग्रंथ की रचना करते हैं ।

❖ शक्ति होने पर भी जो परोपकार नहीं करता है, भवांतर में उसके ऊपर उपकार करने का किसी का भी मन नहीं होता, ऐसा कर्म बांधता है।

❖ जो जीव जिस भावना के योग्य है, वही भावना उस पर करनी चाहिए। उसके विपरीत करने पर दोष लगता है ।

❖ परोपकार करते करते स्वोपकार भी हो जाता है। प्रवचनकार जो बोलते हैं वह सबसे पहले स्वयं को सुनाई देता है, क्योंकि मुँह के सबसे नजदीक स्वयं के कान होते हैं, यदि वे अपने जीवन में इसका अमल न करें, इसके लिए पुरूषार्थ भी न करें, तो दूसरे के ऊपर इसका असर होना बहुत मुश्किल है ।

❖ किसी को खाने को देते हैंतो १ दिन का उपकार होता है । किसी को पैसा-कपड़ाआदि देते हैं तो थोड़े महीनों / वर्षों का उपकार होता है । किसी को धंधा सिखाते हैं / मरने से बचाते हैं तो पूरी जिंदगी का उपकार होता है । जब किसी को आत्महितकारी ज्ञान देते हैं तो भवोभव का उपकार होता है। इसलिए ज्ञान दान, यह श्रेष्ठ उपकार है।

❖ ग्रंथकार का एक प्रयोजन होता है, दूसरों को जिनवचन देने से भवांतर में स्वयं को जिनवचन मिलते हैं ।

❖ सबसे महत्वपूर्ण प्रयोजन है, परंपरा से मोक्ष की प्राप्ति ।

❖ प्रत्येक सत्कार्य का अंतिम लक्ष्य तो मोक्ष ही है । हम जो कुछ भी सुकृत करते हैं, उन सभी का अंतिम फल हमें मोक्ष ही चाहिए, यह

निश्चित है ना ?

❖ "मुझे मोक्ष चाहिए" यह कहना अलग बात है, और वास्तव में मोक्ष की इच्छा का होना, यह बिल्कुल अलग है। अनंत काल में अनंत बार हमने आराधनाएँ की हैं। चारित्र भी लिया और पाला भी है, फिर भी हमारा मोक्ष नहीं हुआ, इसका मुख्य कारण यह है कि वास्तव में हमें मोक्ष की इच्छा ही नहीं थी। फिर भी हम यही बोलते रहते हैं कि "मुझे मोक्ष ही चाहिए।"

❖ दूसरों से सुनकर २-३ वर्ष का बालक भी बोलता है कि "मुझे अमेरिका जाना है।" पर उसके परमार्थ की उसे कुछ जानकारी नहीं होती है। हम भी बोलते हैं कि "मुझे मोक्ष में जाना हैं" पर हमें इसका परमार्थ पता है क्या ? हमारी परिस्थिति भी उस बालक जैसी तो नहीं है ना ?

❖ अनंतकाल से हमें सामग्री में ही सुख दिखाई देता है। यदि आराधना कभी की भी तो उसके फल के रूप में यही सुख चाहा है। कभी मुँह से ऐसा कहा भी हो, कि "मुझे तो मोक्ष ही चाहिए" पर वास्तव में मोक्ष जैसा है वैसा हमें चाहिए ही नहीं था। मोक्ष के नाम पर हमें तो स्वर्ग इत्यादि सुख ही चाहिए थे। सामग्री के बिना सुख हो सकता है, ऐसा हम मानने के लिए कभी तैयार ही नहीं थे। इसलिए मोक्ष की हमारी इच्छा वास्तविक नहीं थी, और इसी कारण हमारा संसार कभी घटा नहीं, मोक्ष की ओर प्रयाण भी नहीं हुआ। भले ही सामग्री के सुखों में आकर्षण हो, परन्तु सामग्री के बिना भी सुख है, ऐसा मानने के लिए हमारा अंतर्मन यदि तैयार हो जाए तो तब से ही मोक्ष की ओर हमारा विकास शुरू हो जाता है, और इसके बाद की हमारी आराधनाएँ संसार घटाने वाली और मोक्ष देनेवाली बन सकती है।

❖ अपने आपसे पूछो - आकर्षण किसका ज्यादा है ? स्वर्ग के सुखों का, या मोक्ष के सुख का ? किसका वर्णन सुनकर गुदगुदी होती है ?

ज्यादातर स्वर्ग के सुख ही हमें आकर्षित करते हैं, तो फिर मोक्ष की इच्छा वास्तविक है या मात्र आभासिक है, यह बड़ा प्रश्न है ।

❖ घर में प्यास लगी हो, पर दूसरे काम में व्यस्त हो जाएँ, तो घंटे दो घंटे भूल भी जाते हैं । जंगल में यदि कोई रास्ता भूल गया हो, बहुत घूमने पर भी रास्ता नहीं मिल रहा हो, ऊपर सूरज तप रहा हो और यदि उस समय पानी की प्यास लगे तो यह एक अलग बात है, क्योंकि इस समय रोम-रोम से पानी की पुकार निकलती हैं । हमें मोक्ष पाने की इच्छा यदि है तो दोनों में से कैसी ?

सभा : पर मोक्ष में सुख है, ऐसी श्रद्धा कैसे हो सकती है ? इसका तो कुछ अनुभव ही नहीं है ।

❖ प्रशमरति में उमास्वातिजी महाराज साहब ने बताया है कि सिद्ध के सुख का प्रतिबिंब, निःस्पृह साधु भगवंतों में देखने को मिलता है । आपके पास जितनी सामग्री है, उससे बहुत कम साधु भगवंत के पास है, फिर भी वह आपसे अधिक सुखी हैं, यह वास्तविकता है । यही बताता है कि सुख का सामग्री के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है ।

तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वातिजी म.सा. बताते हैं कि जैसे जैसे ऊपर के देवलोक में जाते हैं, वैसे वैसे सामग्री कम होती है फिर भी सुख बढ़ता जाता है ।

❖ साधु भगवंत को जो चाहिए वह मिल रहा है, इस कारण उनको कोई चिंता नहीं हैं, इसलिए वे सुखी हैं, ऐसा नहीं है । बल्कि उनकी कोई इच्छा ही नहीं हैं, इसलिए वे सुखी हैं ।

❖ अनंत काल से आप सामग्री में सुख मानकर, सामग्री पीछे दौडे हो। इन्द्रिय पराजय शतक में कहा है कि हमारे जीव ने इस जगत में विद्यमान सभी सामग्रियों को भोग लिया है, फिर भी तृप्ति नहीं मिली। इसका अर्थ यही है कि वास्तविक रूप से सामग्री में सुख है ही नहीं। परन्तु मोहनीय कर्म का उदय, जीव को उसमें सुख का भ्रम कराता है,

और सामग्री के पीछे दौडाता है ।

❖ समुद्र का पानी भी पानी ही है, पर इसे पीने से प्यास बुझती नहीं, बल्कि बढ़ जाती है । इसी तरह सामग्री में सुख दिखता है, पर इसे भोगने से सुख की इच्छा शांत नहीं होती, बल्कि बढ़ जाती है ।

❖ परछाई के जल के पीछे जैसे जैसे कोई दौड़ता है वैसे वैसे जल भी आगे दौड़ता ही जाता है । इसी तरह इच्छाओं को पूरी करने का जैसे जैसे प्रयास करते हैं वैसे वैसे इच्छाएँ बढ़ती ही जाती हैं ।

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है – ''इच्छा आकाश जैसी अनंत है । जैसे जैसे लाभ होता जाता है, वैसे वैसे लोभ बढ़ता जाता है ।''

❖ उपदेशमाला में धर्मदासगणि ने सुंदर दृष्टांत द्वारा यह पदार्थ समझाया है । खुजली के रोगी को भयंकर खुजली हुई । वह लकड़ी का टुकड़ा लेकर खुजलाता रहता । एक बार रास्ते में जाते हुए खुजली हुई, लकड़ी का टुकड़ा कहीं से भी नहीं मिला । सामने से आता हुआ एक व्यक्ति मिला, उससे लकड़ी का टुकड़ा मांगा । व्यक्ति ने पूछा – ''क्यों चाहिए ?'' रोगी ने कहा – ''खुजलाने के लिए'' । व्यक्ति वैद्य था, उसने कहा – ''मैं आपको जो दवाई देता हूँ, वह ले लो, उससे आपकी खुजली मिट जाएगी, फिर लकड़ी के टुकड़े की आवश्यकता नहीं रहेगी ।'' उस रोगी ने इन्कार करते हुए कहा – ''मेरी खुजली यदि मिट जाएगी, तो फिर मुझे खुजलाने का जो आनंद आता है, वह चला जाएगा। इसलिए मुझे दवाई नहीं चाहिए, लकड़ी का टुकड़ा ही चाहिए ।'' इस रोगी जैसी ही हमारी हालत है । उसे खुजलाने में आनंद आता है, निरोगी व्यक्ति समझता है कि वास्तव में यह रोग हैं, दुःख है । इसी प्रकार हमें संसार की सामग्री की इच्छा होती है, इसे पाने में आनंद आता है । पर ज्ञानियों को पता है कि ''यह भवरोग हैं'', और इसीलिए सामग्री के पीछे हमारी दौड को देखकर दुःख होता है । वे कहते हैं कि ''सामग्री (लकड़ी का टुकड़ा) रहने दो, मैं आपको धर्म

(दवाई) देता हूँ, जिससे आपको कभी भी सामग्री की इच्छा ही नहीं होगी और मोक्ष मिल जाएगा ।" पर हमें इस सुख पर श्रद्धा ही नहीं होती ! और कहते हैं कि "कोई भी सामग्री यदि मोक्ष में नहीं है, तो फिर आनंद किसका रहेगा ? ऐसा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए !"

❖ हमें इच्छा की पूर्ति में सुख दिखाई देता है । ज्ञानी कहते हैं कि, इच्छा ही दुख है । इच्छाओं का नाश ही सच्चा सुख है । एक चिंतक ने अच्छी बात कही है - "Desire to be desireless." । साधु को कोई इच्छा नहीं होने के कारण वह परम सुखी है ।

❖ आप अपने किसी मित्र के घर भोजन करने गए हो, आपको गरमागरम रोटी, दाल, चावल, सब्जी परोसे, तो आप दुःखी हो जाते हो, क्योंकि आप मिठाई-नमकीन की अपेक्षा लेकर आप गए थे । किसी तीर्थ की भोजनशाला में गरमा-गरम रोटी, दाल, चावल, सब्जी यदि मिल जाए तो आप खुश हो जाते हैं, क्योंकि आपकी अपेक्षा से ज्यादा अच्छा भोजन मिला ! यह बताता है कि सुख मिठाई में भी नहीं, रोटी में भी नहीं, बल्कि आपकी अपेक्षा ही सुख-दुःख की जननी है । पंचसूत्रकार ने अच्छा कहा है, अपेक्षा ही दुःख है । हम गोचरी जाते हैं, तब बिना किसी अपेक्षा से ही जाते हैं, फिर चाहे मिठाई मिले, या सूखी रोटी मिले, मेवा मिले या सब्जी भी नहीं मिले, ऐसा भी हो सकता है, पर इन सभी परिस्थितियों में हमारी प्रसन्नता समान ही रहती है, क्योंकि हमने कोई अपेक्षा रखी ही नहीं थी, सारी परिस्थितियों के लिए तैयार थे ।

अच्छे से अच्छा मिले, ऐसी आशा भले ही रखो,
पर खराब से खराब मिले, तो उसके लिए भी तैयार रहो ।
Hope for the best, but be ready for the worst.

❖ मोक्ष का अर्थ सभी कर्मों का नाश ही नहीं, बल्कि सभी इच्छाओं का भी नाश है, और इसीलिए यहाँ परमसुख है ।

❖ आपको कितना मिल जाए, तो आप सुखी ? ऐसी इच्छाओं को लिस्ट बनाओ । आपको पता चल जाएगा कि आपकी सारी इच्छाएँ पूरी हो, ऐसा पूरी जिंदगी में भी हो नहीं सकता और आप कभी भी सुखी होने वाले नहीं हैं ।

❖ सामग्री कितनी भी हो, जिसको अभी भी बहुत सारी प्राप्त करने की इच्छा है, तो वह दरिद्र ही है । और यदि किसी के पास फूटी-कौड़ी भी नहीं है, फिर भी उसे कुछ पाने की इच्छा न हो, तो उसके जैसा धनवान इस दुनिया में कोई नहीं है ।

❖ संयम में संसार की सामग्रियों की इच्छा तो खत्म हो ही जाती है, आगे बढ़ने पर क्षपक श्रेणी में तो मोक्ष मिलने की इच्छा भी नहीं रहती ।

❖ आपको जो सामग्री (बंगला, कार, पैसा इत्यादि) मिलने में सुख दिखाई देता है, उसे पाने के लिए मेहनत करने से पहले, जिसे यह सामग्री मिल गई है, उससे पूछ लो "आपको इसमें सुख मिला है सही ?"

❖ सामग्री में सुख है, इस भ्रम से आप सामग्री प्राप्त करने के लिए दौड़ते हो, इसमें करूणता यह है कि इस दौड में आप प्राप्त सुख को (आरोग्य, शांति, प्रसन्नता) भी खो देते हो ।

❖ जवानी में धन कमाने के लिए आरोग्य गँवाना और बुढ़ापे में आरोग्य प्राप्त करने के लिए धन खर्च करना, यह आज के जीवन की हास्यास्पद कहानी है ।

❖ पैसे से लोग आपको सुखी कहेंगे, पर आपको सुख का अनुभव होने वाला नहीं है ।

❖ धन कमाने में भी दुःख है, (कष्ट सहन करना पड़ता है ।)
धन संभालने में भी दुःख है, (सुरक्षा की चिंता)
धन भोगने में भी दुख है, (लोगों की ईर्ष्या इत्यादि)
धन जाता है, तब भी दुःख होता है ।

तो भी आपको धन में ही सुख दिखाई देता है ।

❖ कितने रूपये इकट्ठे करने हैं, इसका कोई लक्ष्य निश्चित किया है ?

❖ अभी जितनी इच्छा है, वह सब पूरी हो जाए, तो कमाना बंद करना, इतना निश्चित करना है ? यदि आप कभी भी रूकने का निर्णय ही नहीं करेंगे, तो सारी जिंदगी, इस दौड़ में ही पूरी हो जाएगी ।



सम्बन्ध

❖ मंगल और प्रयोजन कहने के बाद ग्रंथकार, 'सम्बन्ध' कहते हैं। ग्रंथकार स्वयं अपनी मतिकल्पना से कुछ कहते नहीं है, बल्कि स्वयं की गुरुपरंपरा से जो ज्ञान मिला है, वही कहते हैं। यह गुरुपरंपरा रूपी सम्बन्ध है। इसके द्वारा यह निश्चित हो जाता है कि ग्रंथकार जो कुछ भी कहते हैं, वह आखिर तो परमात्मा ने ही कहा है। क्योंकि वही गुरूपरंपरा से आता है। इसलिए यह भी परमात्मा के वचन जितना ही प्रमाणभूत है, सच है।

❖ जिनशासन में स्वमतिकल्पना से कुछ भी कहने का किसी को भी अधिकार नहीं है। जो भी परमात्मा ने, पूर्वाचार्यों ने कहा है, वही शास्त्रकार फिर से कहते हैं, भले ही भाषा की शैली अलग हो।

❖ महाबुद्धिमान पूर्वाचार्यों को भी अपने ग्रंथ में किसी भी जिनवचन के विरुद्ध पदार्थ न आ जाए, उत्सूत्र भाषण न हो जाए इसकी बहुत चिंता रहती थी, इसीलिए ग्रंथ का सर्जन करने के बाद इसे दूसरे विद्वानों से संशोधित कराते थे। पूज्य उपाध्याय मानविजयजी म.सा. ने धर्मसंग्रह लिखने के बाद, महोपाध्याय यशोविजयजी म.सा. से संशोधित करवाया था। पूज्य आचार्य भगवंत प्रेमसूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में कर्मसाहित्य का सर्जन हुआ, यह सब पू. आ. भगवंत श्री उदयसूरीश्वरजी म.सा. ने देखा था।

❖ उत्सूत्र भाषण (परमात्मा के वचन से विरुद्ध बोलना) जैसा जगत में कोई पाप नहीं हैं।

❖ स्वयं को बुद्धिमान मानने वाले अनेक लोगों में, धर्मक्षेत्र के किसी भी अभ्यास के बिना, हर बात में सलाह सूचन करने की, अभिप्राय देने की, निंदा करने की आदत होती है, शौक होता है। उन्हें समझ लेना चाहिए कि उन्हें ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं है। भूल से भी

होने वाला उत्सूत्र भाषण संसार का परिभ्रमण बढाने वाला होता है। प्रभु वीर के जीव ने तीसरे मरीची के भव में १ ही बार उत्सूत्र भाषण किया। कपिल ने मरीचि के पास ही दीक्षा लेने का आग्रह करते हुए पूछा, "क्या आपके पास धर्म नहीं है ?" तब मरीचि ने कहा, "धर्म वहाँ भी (प्रभु के पास भी) है, यहाँ भी है।" स्वयं के पास सच्चा धर्म नहीं है, यह जानते हुए भी, मरीचि ने उत्सूत्र भाषण किया, तो प्रभु का संसार १ कोडाकोडी सागरोपम जितना बढ गया। २७ भव के स्तवन में कहा है - "एणे वचने वध्यो संसार... ।" यदि मरीचि ने यह वचन नहीं कहा होता तो बहुत कम समय में ही उनका मोक्ष हो जाता, क्योंकि सुखशीलता के कारण चारित्र से भ्रष्ट होने पर भी, सम्यग्दर्शन उन्होंने टिकाया हुआ था। आप विचार करो, कि स्वयं से ही प्रतिबोध पाए हुए को दूसरे के पास भेज देना कितना दुष्कर कार्य है। मरीचि जिसको भी प्रतिबोध करते, जो वैराग्य प्राप्त कर दीक्षा लेने के लिए तैयार होते, उसे कहते, "मैं तो शिथिल हूँ, मेरे पास नहीं, आदिनाथ भगवान के पास दीक्षा लो।" इस तरह उन्होंने अपना सम्यक्त्व सुरक्षित रखा था। पर उत्सूत्र वचन से समकित को खो दिया और तिर्यंच में असंख्य भव भटके, सातवी-चौथी नरक में जाना पडा। यदि खुद परमात्मा के जीव का भी यह हाल हुआ हो, तो धर्म के विषय में कुछ जाने बिना बोलने से पहले हमें १०० बार विचार करना चाहिए। दूसरी बात-केवली भगवंत के बिना अंतिम सत्य कोई भी जान नहीं सकता, तो भी वर्तमान काल में कितने ही लोग ऐसा मानते हैं, और बोलते हैं कि "हमारे पास ही सच्चा धर्म है, बाकी सब बिल्कुल झूठे हैं, मिथ्यात्वी हैं, लोगों को गलत मार्ग में डाल रहे हैं।" इन्हें क्या मरीचि याद नहीं आता ?

❖ गुरुपरंपरा का संबंध कहा है, प्रभुवचन का नहीं, यह बात भी बहुत महत्वपूर्ण है कि प्रभुवचन भी गुरुपरंपरा के सापेक्ष है। मतलब कि

क्षेत्र-काल की अपेक्षा गीतार्थ गुरू भगवंतों ने जो कुछ भी बदलाव किया है, वह भी प्रभुवचन ही बनता है। स्वयं परमात्मा ने ही गीतार्थ गुरूभगवंतों को सत्ता दी है, और इस गुरूपरंपरा से आई हुई आज्ञा का खंडन, यह जिनाज्ञा का ही खंडन होता है।

संबोधसित्तरि ग्रंथ में बताया गया है - आचार्य तीर्थंकर के समान हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि तीर्थंकर की तरह आचार्य अष्टप्रातिहार्य या ३४ अतिशय युक्त होते हैं, यह भी अर्थ नहीं है कि तीर्थंकर की तरह आचार्यादि के मंदिर बनवाना या उनकी पूजा करना; पर इसका अर्थ यह है कि जिस तरह तीर्थंकर की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए, उसी तरह आचार्य की आज्ञा का उल्लंघन भी नहीं करना चाहिए।

❖ परमपावन कल्पसूत्र में भी साधु भगवंतों के आचार बताने के बाद अंत में कहा है कि सबकुछ आचार्य को पूछकर ही करना, क्योंकि "आयरिया पच्चुवायं जाणंति।" मतलब कि आचार्य भगवंत लाभ नुकसान को जानते हैं। इसलिए आवश्यकता होने पर उत्सर्ग रूप प्रभु की आज्ञा में अपवाद मार्ग में बदलाव करे तो वह मान्य रखना चाहिए।

❖ गुरु की आज्ञा में रहना, यही भावदीक्षा है, यही सच्चा साधुत्व है।

❖ गुर्वाज्ञा से नवकारशी करने वाला साधु, स्वच्छंदमति से मासक्षमण करने वाले साधु की अपेक्षा कहीं अधिक कर्मनिर्जरा करता है, क्योंकि गुर्वाज्ञापालन मूलगुण है।

❖ अनंत काल में अनंत बार चारित्र पालन करने के बाद भी मोक्ष नहीं हुआ, इसका एक मुख्य कारण स्वच्छंदमति है।

❖ गुरू की आशातना करने वाले का कभी मोक्ष नहीं होता।

❖ श्रुतज्ञान भी गुरू के आधीन है।

गुर्वाज्ञा / गुरू पारतंत्र्य से रहित शास्त्राभ्यास भी सम्यग्ज्ञान नहीं दे सकता।

❖ संविग्न गीतार्थ गुरू भगवंतों का निर्णय सर्वोपरि है, उनके सामने कभी भी किसी चीज का आग्रह नहीं रखा जा सकता ।

❖ यदि स्वयं परमात्मा के द्वारा बताई हुई भादरवा सुद ५ की संवत्सरी को बदलकर चौथ की जा सकती हो, पूनम की पक्खी चौदश की की जा सकती हो तो हमारे द्वारा ही स्थापित परंपराओं को पकड़कर रखने का आग्रह, यह जड़ता है - कदाग्रह है। संविग्न गीतार्थ गुरू भगवंत को इसको बदलने का पूर्ण अधिकार है ।

❖ जो संविग्न गीतार्थ गुरू के वचन में श्रद्धा नहीं रखता है, प्रभु वचन के प्रति उसकी जो श्रद्धा है वह भ्रामक है ।

❖ जो गुरू भगवंत की आज्ञा मान्य करनी है, उनके दो विशेषण शास्त्रकार ने बताए हैं -

(१) संविग्न - जिसके राग-द्वेष मंद हों ।

स्वयं की भूल हो गई हो, तो मालूम पड़ते ही कबूल करें और सुधार लें।

जो पापभीरू-भवभीरू हो ।

(२) गीतार्थ : शास्त्र के पारगामी-रहस्यों के ज्ञाता, उत्सर्ग अपवाद, निश्चय-व्यवहार, द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव के जानकार हों ।

❖ चतुर्थ व्रत (ब्रह्मचर्य) को छोड़कर परमात्मा की किसी भी आज्ञा में एकांत नहीं है। इसलिए उत्सर्ग से जिसका निषेध है, उसकी अपवाद से आज्ञा भी है, उत्सर्ग से जिसका विधान है, उसका अपवाद से निषेध भी है ।

❖ जहाँ उत्सर्ग का आचरण करना हो, वहाँ अपवाद का आचरण करे तो भी प्रभु की आज्ञा का भंग है। इसी तरह अपवाद का आचरण करना हो, वहाँ भी (सत्त्व नहीं होने के बावजूद) उत्सर्ग का आचरण करे, तो भी प्रभु की आज्ञा का भंग ही है। कहाँ उत्सर्ग का आचरण करना / कहाँ अपवाद का आचरण करना, इसका निर्णय गीतार्थ गुरू भगवंत ही

कर सकते हैं, इसीलिए गुर्वाज्ञा सर्वोपरि है ।

❖ प्रभु वचन के अनंत अर्थ हैं, उनमें से कब कौनसा अर्थ करना, यह भी गीतार्थ गुरूभगवंत ही जानते हैं, इसलिए जिनवचन का ज्ञान भी गुरू के पास से ही लेना चाहिए ।

❖ आचार्य भगवंत कौए को सफेद कहें, तो भी उनके ऊपर श्रद्धा रखनी चाहिए क्योंकि ऐसा कहने के पीछे कुछ कारण होगा ही, और उस पर तहत्ति कहना चाहिए ।

❖ संविग्न गीतार्थ गुरू की आज्ञा को निर्विकल्प तहत्ति न करो, तो मिथ्यात्व का दोष लगता है ।

❖ छद्मस्थ गुरू की भी केवलि की तरह भक्ति करे, तो उसे भवांतर में केवलि भगवंत, गुरू के रूप में प्राप्त होते हैं ।

❖ परमगुरू परमात्मा की प्राप्ति करानेवाले गुरू ही हैं ।



विषय

❖ मंगल, प्रयोजन और संबंध के बाद चौथी बात ग्रंथकार करते हैं। विषय की, यानि वे ग्रंथ में क्या कहने वाले हैं, यह बतलाते हैं। यह जरूरी है, क्योंकि ग्रंथ पढ़नेवाले को, यह विषय मुझे उपयोगी है, ऐसा ज्ञान हो, तो वह रुचिपूर्वक पढ़ता है।

❖ ग्रंथ का नाम है - आत्मप्रबोध।

संस्कृत शब्द 'प्रबोध' के दो अर्थ हैं -

(१) जागना / उठना... (२) प्रकृष्ट बोध - ज्ञान।

ग्रंथकार हमारी आत्मा को जगाना चाहते हैं, अथवा हमारी आत्मा को ज्ञान कराना चाहते हैं।

❖ हमारे जीवन को नियंत्रित करने वाले तीन तत्त्व हैं।

(१) शरीर (२) मन (३) आत्मा

(१) अल्पबुद्धि वाले मात्र शरीर के तत्कालीन सुख-दुःख का विचार करके ही प्रवृत्ति करते है। जैसे कि अपथ्य आहार भी स्वादिष्ट होता है, तो पेट भरकर खा लेते हैं, भले ही इससे रोग हो जाए।

(२) कुछ विकसित बुद्धिवाले जीव, शरीर के तत्कालीन दुःख को न देखते हुए लंबे समय के सुख की इच्छा करते हैं। जैसे कि जिससे सुरक्षा या अभिमान का सुख मिलता हो, ऐसे धन को पाने के लिए शरीर को कष्ट देते हैं।

(३) आत्मदृष्टि वाले जीव, शरीर-मन के सुख की उपेक्षा करके, आत्मकल्याण को ही प्रधानता देते हैं। जैसे कि स्वादिष्ट और गुणकारी आहार भी यदि राग का कारण होता है, तो आत्मा के लिए नुकसानदायक होने के कारण उसे छोड़ देते हैं।

❖ आप धर्माराधना करते हो, तब तो शरीर-मन को छोड़कर, आत्मा को

ही प्रधान मानते हो, इतना तो निश्चित है ना ? प्रतिक्रमण करते हुए, शरीर को कष्ट होता हो, तो भी खड़े-खड़े ही करते हो ना ? यात्रा करने जाते हो, तो वहाँ खाने-पीने-रहने की व्यवस्था अच्छी नहीं हो, तो राग-द्वेष तो नहीं करते हो ना ? आत्मनिरीक्षण करने से पता चलता है कि हमारी ज्यादातर धर्माराधना भी शरीर तथा मन को संभालकर ही होती है ।

❖ आत्मा महाबलवान् है । क्षपकश्रेणी में चढी हुई एक आत्मा की ताकत, जगत् के सभी जीवों के सारे कर्मों को खत्म कर देने की है, यह उमास्वामतिजी महाराज साहब ने प्रशमरति प्रकरण में कहा है ।

पर जब तक यह सो रही है, तब तक उसके ऊपर कर्म शासन करता है ।

❖ कोई भी कार्य करते समय, अपने आपसे पूछो, विचारो, 'इसमें मेरी आत्मा को लाभ है या नुकसान ?' २४ घंटे में, दिन में एक बार आत्मा को याद करते हो सही ? 'आज के दिन मैंने अपनी आत्मा के लिए क्या किया ?'

❖ शरीर पर आपकी ममता इतनी ज्यादा गाढ़ी हो गई है कि शरीर को ही 'मैं' मानकर जीते हो ।

'मैं' अर्थात्'मेरी आत्मा', यह शरीर से अलग है, ऐसा भेदज्ञान यदि आत्मसात् हो जाए, तो सबकुछ सहन करने की शक्ति पैदा हो जाएगी।



अधिकारी

❖ यह ग्रंथ कौन पढ़ सकता है ? किसको उपकारी बनेगा ?
वह ग्रंथ वांचन का अधिकारी कहलाता है । 'आसन्नभव्य' जीव इस ग्रंथ के अधिकारी हैं ।

❖ जीव ३ प्रकार के हैं - (१) अभव्य (२) जातिभव्य (३) भव्य।

❖ जिस जीव में मोक्ष में जाने की योग्यता ही नहीं है, वह अभव्य जीव है । जैसे मूँग के कुछ दाने ऐसे होते हैं कि कितना भी प्रयत्न करो, पर सीजते नहीं हैं, इसी तरह अभव्य जीव कितनी भी आराधना करें, तो भी उनका मोक्ष कभी भी नहीं होता है । मोक्ष में सामग्री न होने पर भी परमसुख हो सकता है, ऐसी श्रद्धा अभव्य जीवों को कभी भी होती ही नहीं है, और इसीलिए मोक्ष पाने की इच्छा भी उसे कभी नहीं होती है ।

❖ अभव्य जीव, ११ अंग + साढे नौ पूर्व जितना ज्ञान पढ़ता है, निरतिचार जैसे चारित्र का पालन करता है, फिर भी उसे सम्यग्दर्शन कभी नहीं होता है । गाढ़ मिथ्यात्व ही होता है ।

❖ जैसे बीज में वृक्ष उगाने की योग्यता होने पर भी जरूरी पानी, खाद इत्यादि न मिले, तो वृक्ष उगता नहीं; इसी तरह कई जीवों में मोक्ष में जाने की योग्यता होने पर भी, उन्हें योग्य सामग्री (मनुष्य जन्म, प्रथम संघयण, कर्मभूमि इत्यादि) कभी मिलती ही नहीं हैं, और इसीलिए वे कभी मोक्ष में नहीं जाते हैं, उन्हें 'जातिभव्य' जीव कहते हैं ।

❖ जिनमें मोक्ष में जाने की योग्यता है, वे भव्य जीव दो प्रकार के हैं - (१) दूरभव्य जीव (२) आसन्नभव्य जीव ।

❖ जो संसार का बहुत भ्रमण करने के बाद मोक्ष में जाने वाले हैं, वे दूरभव्य जीव कहलाते हैं ।

❖ वह चाहे जितना भी पुरूषार्थ करे, उसका मिथ्यात्व मोहनीय कर्म क्षीण नहीं होता ।

❖ उसकी धर्माराधना, उसे सद्गति देती है, पर संसार घटा नहीं सकती।

❖ उसे मोक्ष सुख के प्रति श्रद्धा ही नहीं होती है ।

❖ जिसका संसार परिभ्रमण १ पुद्गलपरावर्त से कम बाकी रहा है, उन जीवों को आसन्नभव्य, चरमावर्ती, शुक्लपाक्षिक, हलुकर्मी, अपुनर्बंधक कहा जाता है । (१ पुद्गलपरावर्त में अनंत कालचक्र बीत जाते हैं । १ कालचक्र, २० कोडाकोडी सागरोपम का होता है ।)

❖ आसन्नभव्य जीवों के ३ लक्षण शास्त्रकारों ने बताए हैं –

(१) तीव्र रसपूर्वक पाप नहीं करता है ।

(२) संसार के सुखों पर तीव्र आसक्ति नहीं होती है ।

(३) स्वयं की कक्षा के अनुसार उचित-योग्य कार्य ही करता है।

❖ आसन्नभव्य जीव ही उपदेश के योग्य हैं । दूसरे जीव अयोग्य होने से उनको उपदेश देना निषेध है । कच्चे घड़े में पानी भरने से घड़ा फूट जाता है, और पानी भी गिर जाता है; इसी तरह अयोग्य जीव को उपदेश देने से, विपरीत परिणाम होने से नुकसान ही होता है । और जीव की अयोग्यता जानते हुए भी यदि गुरू उपदेश दें, तो गुरू को भी नुकसान होता है ।

❖ तथा भवितव्य को पकाने से जीव आसन्नभव्य बनता है । इसके ३ उपाय पंचसूत्रकार ने बताए हैं – सुकृतों की अनुमोदना
दुष्कृतों की गर्हा
चार शरणों का स्वीकार ।



सम्यक्त्व

- ❖ सर्वप्रथम ग्रंथकार धर्म के मूलरूप सम्यक्त्व का विवेचन करते हैं, क्योंकि सम्यक्त्व से रहित धर्म शुद्ध नहीं होता है ।

  धर्म यदि महल है, तो सम्यक्त्व उसका पाया है ।

  धर्म यदि वृक्ष है, तो सम्यक्त्व उसका मूल है ।

  धर्म यदि रत्न है, तो सम्यक्त्व उसे रखने की तिजोरी है ।

  धर्म यदि पानी है, तो सम्यक्त्व उसे रखने का बर्तन है ।

  इसलिए सम्यक्त्व के बिना धर्म टिक नहीं सकता ।

- ❖ सुदेव, सुगुरू, सुधर्म पर श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन या सम्यक्त्व है ।
- ❖ अपनी बुद्धि में न बैठे, नहीं समझ में आए, तो भी मानना, आँखों से बिल्कुल उल्टा दिखे, तो भी जो न टूटे, उसका नाम श्रद्धा है।
- ❖ परमात्मा की सर्वज्ञता की परीक्षा करने के बाद, परमात्मा के वचन को आँख बंद करके स्वीकार लेना, यह सच्ची श्रद्धा है । जो अज्ञानी हैं, स्वार्थी हैं, अपनी ही बातों को बदलते रहते हैं, उन वैज्ञानिकों की बात को स्वीकार लेना, यह ही अंधश्रद्धा हैं । परमात्मा के वचनों पर होने वाली श्रद्धा को अंधश्रद्धा कहने वाले, वैज्ञानिकों की बात को विचार किए बिना ही स्वीकार लेते हैं, यह कैसा करूण विरोधाभास है ।

  प्रश्न – पर वैज्ञानिक तो प्रयोगों के द्वारा अपनी बात प्रमाणित करके बताते हैं, इसीलिए हम मानते हैं, तो उन पर होने वाली श्रद्धा को अंधश्रद्धा कैसे कहा जा सकता है ?

  उत्तर – (१) प्रयोग द्वारा प्रमाणित की गई बात भी समय आने पर गलत सिद्ध हो जाती है, ऐसा अनेकों बार हुआ है । विज्ञान के छात्रों को ऐसी बहुत सारी बातें पता हैं । न्यूटन का कहा हुआ गुरूत्वाकर्षण का सिद्धांत, आईन्स्टाईन ने गलत ठहराया है । यह बहुत प्रसिद्ध बात है ।

(२) वैज्ञानिकों में भी बहुत मतांतर है ।

(३) कई दवाईयों का शोध करने के बाद, उपयोग के बाद ऐसा सुनने में आया है, कि वास्तव में यह शरीर के लिए हानिकारक है ।

(४) कितनी बार प्रयोग के नाम पर लोगों की आंखों में धूल झोकी जाती है ।

स्वार्थी लोग ऐसा करें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं ।

ऐसा सुना है कि जगदीशचंद्र बोस ने वनस्पति को सजीव साबित करने का प्रयोग किया तब, उनकी बदनामी करने के लिए, वनस्पति पर डाले जाने वाला जहर, नकली लाया गया ! इसी तरह सेटेलाईट द्वारा लिया गया चंद्र-पृथ्वी का फोटो नकली है, ऐसा कितने ही वैज्ञानिक मानते हैं । ऐसे अनुभव होने के बाद भी, वैज्ञानिकों की बात को आँख बंदकर स्वीकार कर लेना, इसे अंधश्रद्धा नहीं कहेंगे तो और क्या कहेंगे ?

❖ परमात्मा का वचन स्वीकार लेने के बाद, ''यह किस तरह होता है ?'' ऐसी जिज्ञासा कर सकते हैं । यह तो पृच्छा नाम का स्वाध्याय है । पर ''ऐसा होता है या नहीं ?'' ऐसी शंका करने की छूट नहीं है । यह तो सम्यक्त्व को मलिन करने वाला अभिचार है ।

❖ हमारी आंखों से जो भी दिखता है, वह सब कुछ सच ही है, ऐसा कोई नियम नहीं है । रेल की पटरी हमें एक होती दिखाई देती है, पर वह कभी एक नहीं होती । इसी तरह अपनी इंद्रियों से होने वाला ज्ञान बहुत बार भ्रामक होता है । पीलिया हो तो पीला दिखता है, बुखार आए तो शक्कर भी कड़वी लगती है, इसलिए इंद्रियों के ज्ञान की अपेक्षा प्रभु के वचन ही अधिक विश्वसनीय हैं ।

❖ प्रभु के वचन दो प्रकार के हैं -

(१) जिसे तर्क से सिद्ध कर सकते है, जैसे कि आत्मा है इत्यादि ।

(२) जिसे तर्क से सिद्ध नहीं कर सकते, जैसे कि निगोद में अनंत जीव

हैं। (इसके तर्क होते हैं, पर हम समझ नहीं सकते।) दूसरे प्रकार के वचन श्रद्धा से ही मानने योग्य हैं, इसके बदले उसमें यदि तर्क लगाया जाए तो भी दोष लगता है।

❖ प्रभु के वचन भी तीर्थ है - क्योंकि तीर्थ शब्द का एक अर्थ द्वादशांगी किया गया है। स्वयं परमात्मा भी इस तीर्थ को, समवसरण में देशना देने से पूर्व नमस्कार करते हैं।

❖ श्रावक परमात्मा की (प्रतिमा की) भक्ति करता है। साधु परमात्मा के वचन का पालन करता है। साधुधर्म, श्रावकधर्म से ऊँची कक्षा का है, इसलिए परमात्मा की भक्ति की अपेक्षा परमात्मा की आज्ञा का पालन यह ऊँचा धर्म हैं।

❖ जैसे प्रभु की प्रतिमा की पूजा, भक्ति, आशातना त्याग, यह धर्म है। इसी तरह प्रभु के वचनों की पूजा, भक्ति, आशातना त्याग, यह भी धर्म है।

❖ प्रभु का शासन शुरु होता है, श्रुतज्ञान की रचना से। प्रभु का शासन चलता है, श्रुतज्ञान के आधार पर।

❖ प्रभु के वचन पर श्रद्धा यह सम्यग्दर्शन है। प्रभु के वचन की जानकारी यह सम्यग्ज्ञान है। प्रभु के वचन का पालन यह सम्यक् चारित्र है। इस तरह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी संपूर्ण मोक्षमार्ग प्रभुवचन केन्द्रित है।

❖ प्रभुवचन की आराधना ही प्रभु की आराधना है, यह धर्मबिंदु में हरिभद्रसूरिजी म.सा.ने कहा है। इसलिए फलितार्थ यह हुआ कि प्रभु का वचन अपने लिए प्रभुतुल्य ही है।

❖ जिसे परमात्मा का वचन मान्य नहीं है, वह प्रभुशासन से बाहर है।

❖ परमात्मा के वचन पर श्रद्धा इसलिए रखनी है क्योंकि परमात्मा सर्वज्ञ और वीतराग थे।

❖ झूठ बोलने के तीन कारण शास्त्रकार बताते हैं, राग-द्वेष और अज्ञान। कभी राग के कारण झूठ बोला जाता है, जैसे कि धन पर राग होने के कारण धंधे में बहुत झूठ बोलते हो । कभी द्वेष से भी झूठ बोला जाता है - उदाहरण - किसी व्यक्ति को अपमानित करने के लिए झूठा कलंक लगाया जाता है । कभी अज्ञानता से झूठ बोला जाता है । उदाहरण - आपने मुझे पूछा - "ऊपर कोई है ?" मुझे ऐसा ध्यान हो कि ऊपर कोई नहीं है । और मैं ऐसा कह दूँ कि "नहीं, कोई नहीं है," और वास्तव में कोई हो, तो मैंने जो बोला वह झूठ हो गया, यह अज्ञान के कारण बोला गया । (इसीलिए शास्त्रकारों ने हमें इस तरह जवाब देने के लिए मना किया है । मुझे ऐसा ही जवाब देना चाहिए कि, "मैं नीचे आया, तब कोई नहीं था । अभी कोई है या नहीं, यह मुझे नहीं पता ।") प्रभु के इन तीनों कारणों का नाश होने से प्रभु के वचन कभी असत्य नहीं होते हैं ।

❖ प्रभु सर्वज्ञ थे, यह कई लोग मानते नहीं है, अन्य कई लोगों को इस विषय में शंका है । उनको कहना है कि -

(१) आकाश में सूर्य-चंद्र इत्यादि ग्रहों की गति का जो प्रभु ने बताया है, और ज्योतिष शास्त्रों में चला आ रहा है, वह शत प्रतिशत सत्य है । उदय, अस्त-ग्रहण इत्यादि सभी बातें सत्य हैं, एक भी दूरबीन के बिना प्रभु ने यह गणित किस तरह बताया ? मानना ही पडेगा कि प्रभु के पास कोई विशिष्ट ज्ञान था ।

(२) अनादिकाल से जैन धर्म, वनस्पति को सजीव मानता है। २५०० वर्ष पूर्व प्रभुवीर ने पुनः यह बात कही थी, एक भी प्रयोग के बिना। वैज्ञानिकों ने तो यही बात प्रयोग से सिद्ध की, फिर माना, तब तक नहीं मानते थे । इस तरह प्रभु ने बताया कि अलसिया बेइन्द्रिय है, चींटी तेइन्द्रिय है, मकड़ी चउरिन्द्रिय है । प्रभु ने कोई प्रयोग नहीं किया था, किसी भी माइक्रोस्कोप से देखा नहीं था, फिर भी प्रभु की बात

अक्षरसः सही दिखती है, यह प्रभु की सर्वज्ञता के बिना कैसे हो सकता है ?

(३) जैन शासन में बताया गया है कि जल की योनि वायु है, अर्थात् वायु से पानी उत्पन्न होता है । अन्य कोई भी इस बात को नहीं मानता था । वैज्ञानिकों ने सिद्ध करके बताया कि हाइड्रोजन और ऑक्सीजन इन दो वायु में से पानी बनता है । प्रभु ने यह बात सर्वज्ञता के कारण ही जानी होगी ना ?

(४) शब्द-आवाज को जैन धर्म द्रव्य पुद्गलरूप मानता है । दूसरे सभी दर्शन यह मानते नहीं थे, इसे द्रव्य के गुणरूप मानते थे । (समझने के लिए - 'कागज' द्रव्य है, इसका रंग इत्यादि इसके गुण हैं ।) वैज्ञानिकों के सिद्धांत से यह स्थापित हुआ है कि शब्द भी द्रव्य है, इसे पकड सकते हैं इत्यादि ।

(५) अहमदाबाद के एक प्रतिष्ठित श्रावक, ब्रिटेन की युनिवर्सिटी में पढे हुए थे । एक बार मुंबई के श्रावक के साथ भोजन करने बैठे और दही के साथ कठोल मिला लिया । मुंबई के श्रावक ने कहा - "यह क्या कर रहे हो ? इसमें तो द्विदल होता है, इसमें बहुत सारे जीव उत्पन्न हो जाते हैं, यह नहीं खाया जा सकता है ।" अहमदाबाद के श्रावक ने लेबोरेटरी में टेस्ट कराया । लेबोरेटरी ने रिपोर्ट दिया इसमें असंख्य जीव उत्पन्न हुए हैं । प्रभु की बात कितनी सही निकली । ऐसे तो कई दृष्टांत हैं ।

दो रात रखे हुए दही में जीवों की उत्पत्ति, उपयोग का अधिकतम ४८ मिनिट का समय आदि अनेक बातें विज्ञान को भी माननी ही पड़ती है । इसलिए प्रभु सर्वज्ञ थे, इस विषय में कोई भी शंका नहीं रखनी चाहिए ।

प्रभुशासन के शास्त्र पढो, तो पता चले कि कितना गहरा ज्ञान है । 'कर्म' जैसी चीज, जो दिखती ही नहीं है, उसके ऊपर हजारों-लाखों

श्लोक प्रमाण शास्त्र रचे हुए हैं । कर्म के भेद-बंध-उदय आदि अत्यंत सूक्ष्म गणित उसमें बताए गए हैं और सभी अत्यंत सचोट तर्कयुक्त हैं । 'कम्मपयडी' शास्त्र पढनेवाले तो प्रभु के ज्ञान पर न्योछावर हो जाते हैं । १४ राजलोक का भूगोल, जीवों का गमनागमन, सभी जीवों का आयुष्य, शरीर की उँचाई इत्यादि, इतना सारा विवेचन शास्त्रों में है, कि सर्वज्ञता के बिना, यह संभव ही नहीं हैं । यह सबकुछ प्रभु की सर्वज्ञता को सिद्ध करता है ।

❖ प्रभुशासन में साधु के आचारों का जो सूक्ष्मतम निरूपण देखने को मिलता है, वह भी अद्‌भुत है । पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि सर्वज्ञता के बिना इतना सूक्ष्म निरूपण कोई कर ही नहीं सकता है । एक-दो उदाहरण बताता हूँ - ओघनिर्युक्ति ग्रंथ में साधु की विहारविधि बताई गई है । कब उठना, कब निकलना आदि सबकुछ बताया गया है, फिर आगे बताया गया है कि मान लो कि रास्ते में दो विकल्प हैं । एक रास्ते में पृथ्वी सचित्त है, दूसरे रास्ते में पानी सचित्त है, तो फिर क्या करना ? अथवा एक रास्ते में वनस्पति है, दूसरे रास्ते में पानी है, तो क्या करना ? एक रास्ता पत्थर वाला है, दूसरा रास्ता मिट्‌टीवाला है, तो किस रास्ते से जाना ? सभी विकल्प बताकर, उसमें से मार्ग बताया कि "इस रास्ते से जाना - इस रास्ते से नहीं जाना ।" गोचरी से आने के बाद कैसे बैठना, कैसे देना, किसे देना, पहले क्या वापरना, बाद में क्या वापरना, बढने पर क्या करना... इत्यादि छोटी-छोटी सभी बातें बताई गई हैं । सर्वज्ञता के बिना कौन ऐसा कह सकता है ? यदि प्रभु सर्वज्ञ थे या नहीं, ऐसी जरा भी शंका हो, तो निकाल ही देना । प्रभु सर्वज्ञ थे, इस विषय में कोई भी शंका नहीं होनी चाहिए ।

प्रश्न - पर प्रभु के कई वचनों को वर्तमान वैज्ञानिकों ने गलत भी साबित किया है । जैसे कि जैनशासन में पृथ्वी को थाली जैसी गोल माना गया है, विज्ञान ने पृथ्वी को गेंद जैसी गोल साबित की है तो

फिर प्रभु का वचन गलत हुआ ना ? प्रभु सर्वज्ञ थे, यह किस तरह मान सकते हैं ?

उत्तर – देखो, पहले एक बात समझ लो, कि कोई गृहिणी भात बनाने के लिए चावल रखे, फिर भात बन गया कि नहीं यह देखना हो, तो सारे दाने नहीं देखती है, एक-दो दाने लेकर दबाती है, यदि वह सीझ गया हो, तो वह मान लेती है कि सारे दाने सीझ गए है । इस तरह ऊपर कही गई बातों से प्रभु की सर्वज्ञता सिद्ध हो जाती है, इसलिए प्रभु के वचन सच ही मानने चाहिए । अब रही वात वैज्ञानिकों की, वैज्ञानिक जो भी कहते हैं, वह सबकुछ सच मान लेने की जरूरत नहीं हैं । उदाहरण – वैज्ञानिक कहते है पृथ्वी गेंद जैसी गोल है । इसके सामने पू. पं. श्री अभयसागरजी महाराज साहब ने बहुत प्रश्न करके विश्व की बडी से बडी वैज्ञानिक संस्था 'नासा' को भेजे । इन प्रश्नों के जवाब कोई दे ही नहीं सका, तो फिर उनकी बात सच कैसे मानी जा सकती है? पृथ्वी को गेंद जैसी गोल मानने के लिए वैज्ञानिक तर्क देते हैं कि समुद्र में दूर जाती हुई स्टीमर धीरे धीरे दिखना बंद हो जाती है । अब यह स्टीमर 'रडार' पर तो दिखती है, इसका क्या कारण है ? यह वे समझा नहीं सकते । यदि पृथ्वी गेंद जैसी गोल हो, तो सैकड़ों किलोमीटर दूर से फेंकी हुई मिसाइल, किस तरह स्वयं के लक्ष्य पर पहुँचेगी ? यदि पृथ्वी गेंद जैसी गोल हो, तो यहाँ से पृथ्वी के उत्तर दक्षिण चक्कर लगाकर कोई वाहन या विमान अभी तक वापस क्यों नहीं आ सका ? ऐसे सैकडों प्रश्न हैं, ऐसे ही पृथ्वी को गोल घूमती हुई मानने के लिए है । चंद्र पर विमान गया ही नहीं था, ऐसा कितने ही वैज्ञानिक कहते हैं, और इसकी पुस्तकें भी छपी हैं । मात्र अमेरिका को बलवान राष्ट्र के रूप में सिद्ध करने का यह एक स्टंट ही था, ये वैज्ञानिक स्वार्थी है, अपूर्णज्ञानी है, उनकी बातों के आधार पर प्रभु के वचन को गलत कैसे मान सकते हैं ? अपना भाग्य कमजोर है, कि

बीच में बीते हुए २५०० वर्षों में बहुत सारे श्रुतज्ञान का नाश हो गया है, जिसके कारण अपने पास बहुत सारी बातों को सिद्ध करने की शक्ति ही नहीं रही है। पर इस वजह से यह बात गलत है, ऐसा तो नहीं माना जा सकता है ।

प्रश्न - अगर प्रभु सर्वज्ञ थे, तो प्रभुशासन में मतमतांतर कैसे हुए ?

उत्तर - प्रभु वचन के अर्थघटन में भ्रम हुआ है, इतना ही नहीं, पूर्व में सभी शास्त्र मुँह जबानी ही चलते थे, कुछ भी लिखा हुआ नहीं था। जब लिखा गया, तब किसीको कुछ याद था, किसी को कुछ अलग याद था, यह सबकुछ मतांतर के रूप में संग्रहित हुआ। मूल बात यह है कि प्रभु सर्वज्ञ थे, इस विषय में जरा भी शंका नहीं रखनी चाहिए।

❖ दूसरे सभी धर्मों में परमात्मा बनने की 'मोनोपॉली' किसी एक आत्मा को ही दी गई है। आप कितना भी धर्म करो, तो भी स्वर्ग मिल सकता है, पर आप स्वयं परमात्मा नहीं बन सकते । जबकि जैन शासन में कोई भी आत्मा, परमात्मा बन सकती है। आप साधना करो, तो आप भी कर्म को खपाकर सिद्ध बन जाओगे। आप भावना करो, तो आप भी पुण्य बांधकर अरिहंत बन सकते हो ।

❖ जैन शासन में आत्मा का क्रमबद्ध विकास बताया गया है । १४ गुणस्थानक, ८ दृष्टि इत्यादि के द्वारा। ऐसा क्रमिक विकास किसी भी दर्शन में नहीं है ।

❖ सम्यक्त्व ऐसा अद्भुत रत्न है कि एक बार सम्यक्त्व पाने के बाद जीव अर्ध पुद्गलपरावर्त से अधिक समय तक संसार में नहीं भटकता है ।

❖ गोशालक ने प्रभु वीर की घोर आशातना करके महाभयंकर पाप बांधा, अनेक बार नरक-तिर्यंच गति में गया, पर अंत में सम्यक्त्व पाया, पश्चात्ताप हुआ, तो संसार सीमित कर लिया, अर्ध पुद्गल परावर्त काल में मोक्ष में जाएगा ।

❖ सम्यक्त्व की उपस्थिति में, वैमानिक देवलोक अथवा मनुष्यगति के अलावा और कोई आयुष्य नहीं बंधता है । श्रेणिक पूर्व में बांधे हुए, आयुष्य के कारण ही नरक में गए, पर नया अशुभ आयुष्य कभी बंधता नहीं है ।

❖ सम्यक्त्वी जीव को जो कर्म बंधते है, उसकी उत्कृष्ट स्थिति (काल) १ कोडाकोडी सागरोपम के अंदर ही होती है । मिथ्यात्वी जीव ७० कोडाकोडी सागरोपम की स्थितिवाला कर्म भी बांध सकता है ।

❖ जिसके पास सम्यक्त्व है, यदि उसके पास तत्त्वज्ञान नहीं है, तो भी रूचि तत्त्व की ही होती है । और ऐसा आंतरिक क्षयोपशम होता है, कि उसके सामने दो विकल्प आये-तत्त्व और अतत्त्व, तो उसे प्रायः तत्त्व ही सच लगता है, अतत्त्व नहीं ।

❖ दीवार पहले साफ की हो, तो उस पर बनाए गए चित्र अच्छे लगते हैं । गंदी दिवार पर बनाए गए चित्र शोभा नहीं देते हैं । इसी तरह सम्यक्त्वी आत्मा का ही धर्म अच्छा दिखता है ।



मिथ्यात्व

❖ मिथ्यात्व यह संसार का मूल है। जब तक मिथ्यात्व कम नहीं होता. तब तक कितनी भी आराधना करो, संसार कम नहीं होता है।

❖ मिथ्यात्व मोहनीय कर्म (जिसके उदय से जीव मिथ्यात्वी बनता है। कर्मों का राजा है। कुल १५८ कर्म प्रकृति में एकमात्र मिथ्यात्व मोहनीय का ही क्षय करना पडता है, बाकी की १५७ प्रकृतियों का क्षय स्वयं ही हो जाता है, उसके लिए कोई विशेष पुरूषार्थ की जरूरत नहीं पड़ती है।

❖ मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का हमेशा के लिए क्षय करने वाले को एक अंतर्मुहुर्त में ही केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाती है, सिवाय कि आने वाले भव का आयुष्य बांध लिया हो या तीर्थंकर नामकर्म निकाचित किया हो, तो तीन (कभी ४ या अपवाद में किसी के ५) भव होते हैं।

❖ मिथ्यात्व मोहनीय है तो पापकर्म, परन्तु इसके उदय से दुख नहीं आता है, पर दुर्बुद्धि पैदा होती है, जो अनेक दुर्गति और दुखों की परंपरा का सर्जन करती है।

❖ मिथ्यात्व के मुख्य कार्य हैं,

(१) धर्म में अधर्मबुद्धि कराना

(२) अधर्म में धर्मबुद्धि कराना

❖ धर्म की प्रभावना के लिए किए गए बाह्याडंबर को निरर्थक मानना, इसे हेय मानना, यह भी एक प्रकार का मिथ्यात्व है। अरिहंत परमात्मा सर्वगुणसंपन्न हैं, फिर भी उनकी देशना के लिए समवसरण जैसी भव्य सजावट होती है। और इसका प्रभु निषेध नहीं करते, अर्थात् परोक्ष रूपसे अनुमति ही देते हैं। प्रभु को नहीं जानने वाले बाल जीव भी

समवसरण की भव्यता देखने से आकर्षित होकर प्रभु की वाणी सुनने आते हैं, और फिर प्रभु की वाणी से प्रतिबोध पाकर सम्यक्त्व / देशविरति / सर्वविरति अंगीकार करते हैं । इस तरह बाह्य आडंबर, बाल कक्षा के जीवों को प्रभु के शासन की ओर खींचकर लाने का काम करता है । वर्तमान में भी जिनालय की भव्य सजावट / परमात्मा की अद्भुत अंगरचना, कर्णप्रिय मधुर संगीत इत्यादि के कारण जिनालय में आए हुए जीव यदि प्रभु के दर्शन करें तो प्रभु के दर्शन से आनंद पाऐंगे । जिनशासन के प्रति कुछ अनुराग हो तो बोधिबीज का वपन होता है, जो अंत में मोक्षरूपी फल को उगाता है । इसी तरह अनेक आकर्षणों के कारण, व्याख्यान में खिंचकर आए हुए लोग, प्रभु के वचन सुनकर जिनशासन के प्रति सद्भाववाले बने, तो भी बोधिबीज द्वारा मोक्ष फल प्राप्त करते हैं । इसलिए बाह्य आडंबर भी अपेक्षा से उपादेय बनाता ही है । हाँ, इसमें विवेक चाहिए, स्वप्रसिद्धि की लालसा नहीं चाहिए, जयणा चाहिए, प्रभु आज्ञा की सापेक्षता चाहिए, इतना अवश्य ध्यान में रखना ही चाहिए । अन्यथा कई बार, अविवेक के कारण ऐसे आडंबरयुक्त महोत्सव धर्म की प्रभावना का कारण बनने के बजाय धर्म की निंदा का कारण भी बन जाते हैं ।

❖ इसी प्रकार, प्रभु के द्वारा कहे हुए तप, त्याग को निरर्थक कायक्लेश मानना, यह भी मिथ्यात्व का ही प्रकार है ।

❖ परमात्मा की पूजा जीवहिंसा है, ऐसा कहकर उसे त्याज्य मानना, उसका खंडन करना, यह भी एक प्रकार का मिथ्यात्व ही है । जीवहिंसा के बिना जगत में कोई भी कार्य नहीं हो सकता, इसलिए मात्र हिंसा होने से कोई भी कार्य अधर्म नहीं बन जाता । बोलने में, चलने में, खड़े होने में इत्यादि सभी कार्यों में हिंसा अनिवार्य रूप से होती ही है । जो लोग मंदिर बनाने में, पूजा करने में, प्रभु की रथयात्रा में हिंसा होने से अधर्म है, ऐसा कहते हैं, वही स्थानक बनाने में, गुरू का स्वागत

करने में धर्म है, ऐसा मानते हैं, कहते हैं । कैसा विरोधाभास है ? जहाँ लाभ अधिक है, नुकसान कम है, प्रभु की आज्ञा है, उसमें यदि हिंसा हो, तो भी वह धर्म ही है ।

❖ इस तरह कई लोग प्रतिक्रमण आदि क्रिया को निरर्थक मानते हैं, मात्र ज्ञान-ध्यान को ही धर्म मानते हैं, यह भी मिथ्यात्व है ।

❖ ज्ञान और क्रिया यह मोक्षमार्ग रूपी रथ के दो पहिए हैं, एक भी पहिए के बिना यह रथ नहीं चलता है ।

❖ ज्ञानयुक्त क्रिया की ताकत अनेकगुणा अधिक है, इसमें ना नहीं है, पर अल्पज्ञानयुक्त या ज्ञानशून्य क्रिया भी सर्वथा निरर्थक नहीं है, इसकी भी अपनी ताकत है ही । अभव्य जीवों को सम्यग्ज्ञान नहीं होता है, तो भी चारित्र रूपी क्रिया के बल पर, वह नववें ग्रैवेयक तक जाता है । श्रावकों का ४था-५वा गुणस्थानक है, सम्यगदर्शन-ज्ञान है, फिर भी चारित्ररूपी क्रिया न होने से १२वें देवलोक से ऊपर जा नहीं सकते। (१२ देवलोक-९ ग्रैवेयक-५ अनुत्तर क्रमशः ऊपर ऊपर के देवलोक हैं ।)

❖ पानी में उतरे बिना तैरना नहीं सीखा जा सकता है । इसी तरह क्रिया किए बिना भाव पैदा नहीं होते हैं । यदि कोई ऐसा कहे कि ''भाव उत्पन्न होंगे तभी क्रिया करूँगा'' तो वह यह कहने की मूर्खता कर रहा है, कि ''तैरना आएगा तभी पानी में जाऊँगा'' !

❖ हर रोज रोटी खाने के बाद भी भूख लगती ही रहती है, फिर भी आप रोटी खाना बंद नहीं करते हैं । इसी प्रकार यदि हर रोज सामायिक-प्रतिक्रमण पूजा करते हुए भी कषाय होता ही रहे, तो भी सामायिक आदि करना बंद नहीं करना चाहिए ।

❖ पडिलेहण की क्रिया के संस्कार ने वल्कलचीरी को केवलज्ञान तक पहुँचाया । पूर्व भव में साधु थे । आखिरी भव में तापस बने, फिर युवराज बने, फिर पहले के अपने आश्रम में गए और तापसपन के

साधनों की साफ –सफाई करते करते पूर्वभव के पडिलेहण के संस्कार याद आए, जातिस्मरण ज्ञान हुआ, पूर्वभव देखा, शुभभाव में चढे । केवलज्ञान हो गया ! इसलिए क्रिया के संस्कार हों, ऐसा पुनरावर्तन जरूरी है ।

❖ धर्मिष्ठ सेठ का पुत्र नास्तिक था । बहुत समझाने पर भी नहीं समझा। सेठ को उसके परभव की चिंता हुई, बहुत सोचकर एक काम किया, घर में प्रवेश करने का दरवाजा इतना नीचा करवाया कि उसमें प्रवेश करने के लिए सिर झुकाकर ही जाना पड़े और उस दरवाजे पर प्रभु की प्रतिमा रखी । अब पुत्र जब भी घर में आए, तब मस्तक झुकाकर ही आता है । सामने प्रभु की प्रतिमा दिखे तो भी उसे नमस्कार का – दर्शन का भाव नहीं होता है । पाप से भरपूर जीवन के कारण मरकर तिर्यंचगति में गया, स्वयंभूरमण समुद्र में मछली के रूप में उत्पन्न हुआ। शास्त्रकार लिखते हैं कि स्वयंभूरमण समुद्र में अँगूठी और पाईप के आकार को छोड़कर प्रत्येक आकार के जलचर जीव मिलते हैं– अर्थात् पद्मासन में बैठी हुई प्रभुप्रतिमा के आकार के जीव भी होते हैं । ऐसे किसी जीव के दर्शन उस मछली को हुए, जिससे उसके पूर्वभव के प्रभुप्रतिमा के दर्शन के संस्कार जाग्रत हुए, जातिस्मरण ज्ञान हुआ, स्वयं के दुष्कृत्यों का पश्चात्ताप हुआ । सम्यग्दर्शन पाया, अनशन किया और देवलोक में गया । लगभग भावशून्य क्रिया की भी क्या ताकत है ! ऐसी क्रिया का खंडन करने वाले को बुद्धिमान किस तरह कह सकते हैं ?

❖ बाह्य सभी व्यवहार क्रिया के आधार पर ही चलते हैं, भाव के आधार पर नहीं । "यह साधु है कि नहीं ?" उसका निर्णय उसके अध्यवसाय के आधार पर हम नहीं कर सकते, पर बाह्य वेश, आचारों के आधार पर ही कर सकते हैं । अंतर के परिणाम साधुत्व के ही हो, अरे ! केवलज्ञान भी प्राप्त हो गया हो, फिर जब तक साधु का वेश न हो

तब तक वंदन नहीं किया जाता है। भरत चक्रवती को केवलज्ञान होने के बाद पहले साधुवेश दिया, उसके बाद ही इन्द्र ने वंदन किया।

❖ क्रिया नहीं करनी-उपेक्षा करनी और "मेरे में भाव है इसलिये क्रिया करने की जरूरत नहीं है," ऐसा कहना- यह सिर्फ दंभ है।

❖ सत्त्व/ उल्लास / शक्ति / संयोग इत्यादि के अभाव में क्रिया न करे तो यह अलग बात है, पर क्रिया को निरर्थक मानना - करने जैसी नहीं है ऐसा मानना, यह तो मिथ्यात्व ही है।

❖ क्रिया दो प्रकार की है, द्रव्यक्रिया और भावक्रिया। जैसे कि- भावोल्लास बिना, मात्र मस्तक झुकाकर प्रभु को नमस्कार करना, यह द्रव्यक्रिया है। और प्रभु के अनंतानंत गुणों के प्रति बहुमान के साथ प्रभु को नमस्कार करना, यह भावक्रिया है।

❖ द्रव्यक्रिया भी दो प्रकार की है, प्रधान द्रव्यक्रिया और अप्रधान द्रव्यक्रिया।

❖ जिस द्रव्यक्रिया में भावक्रिया बनने की योग्यता है / सम्भावना है वह प्रधान द्रव्यक्रिया।

❖ जिस द्रव्यक्रिया में भावक्रिया बनने की कोई सम्भावना नहीं है, वह अप्रधान द्रव्यक्रिया।

❖ शास्त्रो में जहाँ-जहाँ द्रव्यक्रिया को त्याज्य कहा गया है, वह अप्रधान द्रव्यक्रिया के लिए ही समझना है। यह अभव्य को / अचरमावर्ती जीव को होती है। और यदि ऐसी अप्रधान द्रव्यक्रिया के पीछे संसार के सुख की तीव्र आसक्ति ही प्रेरक बल बनती हो, तो इससे संसार का परिभ्रमण बढ़ता है, यह भी सम्भव है; इसे शास्त्रकार विषानुष्ठान / गरानुष्ठान भी कहते हैं। जिसे क्रिया अच्छी लगती है, (फिर चाहे उससे कोई फल न भी मिले) तो उसकी क्रिया, प्रधान द्रव्यक्रिया ही है।

❖ क्रिया में भाव- अनेक प्रकार के होते हैं ।

अद्वेष - क्रिया के प्रति अनादर / तिरस्कार न हो ।

रूचि - क्रिया अच्छी लगती हो, करने की इच्छा हो ।

बहुमान - क्रिया के प्रति आदर हो, करने वाले की अनुमोदना करे ।

उपयोग - क्रिया करते समय मन उसमें ही जुडा हुआ रहे ।

❖ धर्म का निर्णय दो तरीके से होता है ।

(१) शास्त्रों से - शास्त्रो में लिखा हो ।

(२) सामाचारी से - सुविहित संविग्न गीतार्थ गुरूभगवंतो की परंपरा में आया हो ।

बहुत सी बातें ऐसी हैं, जो शास्त्रो में नहीं हैं, फिर भी सामाचारी में होने से उसे मान्य किया जाता है । इतना ही नहीं, बहुत सी बातें ऐसी भी हैं, जो शास्त्रो में बिल्कुल अलग होती हैं और सामाचारी इससे अलग होती है, तो भी इसे मान्य रखा जाता है । द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका ग्रंथ में महोपाध्याय यशोविजयजी महाराज साहब ने इस विषय पर विस्तृत निरूपण किया है । तरपणी, चेतनो, कंदोरा इत्यादि अनेक चीजें ऐसी है, जो सामाचारी से ही चलती है, शास्त्र में नहीं है, इतना ही नहीं, उसका निषेध भी है । यह सभी जानते हैं, फिर भी सभी मान्य रखते हैं । इस तरह सामाचारी से चला आया हो, ऐसे धर्म को अधर्म नहीं कहा जा सकता है, सामाचारी भी जिनाज्ञा है, और सामाचारी का खंडन यह जिनाज्ञा का ही खंडन है, ऐसा महोपाध्याय यशोविजयजी म. सा. ने स्पष्ट कहा है ।

कईं बार ऐसा भी होता है कि अलग-अलग समुदाय की सामाचारी अलग-अलग होती है । शास्त्रो में भी यह बात है कि सामाचारी में अनेक कारणों से भिन्नता भी देखने को मिलती है ।

उदाहरण - कईं साधु भगवंत झोली में ३ ही पातरे रखते हैं, तो कईं

४ भी रखते हैं । ऐसे अवसर पर भिन्न समाचारी का खंडन नहीं किया जा सकता है । वह भी धर्म का ही खंडन कहलाता है और इसमें यदि आग्रह आए तो वह भी मिथ्यात्व ही है ।

❖ जैसे धर्म में अधर्मबुद्धि यह मिथ्यात्व है, वैसे ही अधर्म में धर्मबुद्धि यह भी मिथ्यात्व है ।

❖ जहाँ परमात्मा की आज्ञा का कोई अनुसंधान नहीं है, जहाँ परमात्मा की आज्ञा पालन करने का कोई लक्ष्य या पुरूषार्थ नहीं है, वह कभी भी तात्त्विक धर्म नहीं बन सकता है, भले ही वह लोक में धर्म कहलाता हो, क्योंकि 'आणाए धम्मो' यह शास्त्रवचन है ।

❖ जिनाज्ञा धर्म का प्राण है । प्राण बिना शरीर जैसे मानव नहीं कहलाता है, वैसे ही जिनाज्ञा से निरपेक्ष कोई भी क्रिया 'धर्म' नहीं कहलाती है।

❖ अभक्ष्य भोजन के साथ स्वामिवात्सल्य, रात्रि भोजन के साथ यात्रा-प्रवास, जयणा-विवेक से शून्य महोत्सव, यह तात्त्विक धर्म नहीं बनता है, क्योंकि आज्ञारूपी प्राण अनुपस्थित है ।

❖ पाप करना यह समकिती के जीवन में हो सकता है, पर 'पाप'' को धर्म का लेबल लगाकर करना यह तो महामिथ्यात्व है । आपको जलसा-मौज-मजा करना है, और फिर समाज के तिरस्कार से बचने के लिए उसे (यात्रा आदि) धर्म का लेबल लगाते हो, यह महापाप है।

❖ स्कूल-कॉलेज में दान देना, यह धर्म नहीं माना जा सकता है, क्योंकि स्कूल-कॉलेज में दिया जानेवाला शिक्षण आत्मा का सरासर अहित ही करता है ।

❖ जहाँ सेक्स की शिक्षा दी जाए; जहाँ महावीरस्वामी भगवान की समानता गांधी जैसे मामूली पुरुष के साथ की जाए; ऐसे स्कूल-कॉलेज की शिक्षा को ज्ञान कैसे कहा जा सकता है ? यह महाअज्ञान है । इसमें दान देना यह मिथ्यात्व को बढ़ाने वाला है, वह धर्म है या अधर्म ? हाँ, साधर्मिक की सहायता करना या जैनों को अन्य धर्म के स्कूलों में

जाकर धर्मभ्रष्ट बनने से रोकने के लिये जैन स्कूल बनाना यह एक अलग बात है ।

❖ स्कूल में बिल्कुल ही गलत बातें, स्वार्थ के लिए पढ़ाई जाती है जैसे (१) कठोल में बहुत प्रोटीन होने पर भी, प्रोटीन के लिए मछली, अंडा खाने की सलाह दी जाती है ।

(२) इतिहास को बिल्कुल विकृत बनाकर प्रस्तुत किया जाता है।

(३) एलोपेथी का प्रचार किया जाता है, आयुर्वेद को भूला दिया जाता है ।

❖ वर्तमान शिक्षा के प्रचारक मैकाले ने, अपने पत्र में लिखा है कि ''भारत की संस्कृति का बिल्कुल ही नाश करने के लिए मैंने इस शिक्षणपद्धति का निर्माण किया है ।'' ऐसी शिक्षा को प्रोत्साहन किस तरह दिया जा सकता है?

(जैन साधर्मिकों के बालकों को आजीविका मिलती रहे, इस उद्देश्य से अनिवार्य रूप से शिक्षण में सहाय करना, यह साधर्मिक भक्तिरूपी धर्म बनता है । जैनों को अन्य धर्मो के स्कूलो में जाकर धर्मभ्रष्ट बनने से रोकने के लिए जैन स्कूल बनाया जाए तो कुछ अलग बात है, किंतु साथ ही शिक्षा की भयंकरता और असत्यता भी समझानी चाहिए ।)

❖ जो धर्म करने का जिसे आधिकार है, उसीके लिए वह धर्म है, दूसरों के लिए वह अधर्म है । गोचरी वहोरने जाना, यह साधु के लिए धर्म है, पर जो श्रावक कमाता नहीं है, बल्कि भीख माँगता है, तो शासन की अवहेलना करने वाला बनता है, इससे यह अधर्म बनता है, ऐसा द्वात्रिंशद् द्वात्रिंशिका में महोपाध्याय यशोविजयजी म. सा. ने कहा है । इसी तरह श्रावक के लिए परमात्मा की पूजा, देरासर बनवाना धर्म है, पर साधु के लिए यह अधर्म है । साधु जिनमंदिर बनाने का उपदेश देता है, प्रेरणा करता है, पर स्वयं नहीं बनवाता है । यदि बनवाता है,

तो उससे अन्य व्यक्ति भले ही धर्म पायें, यह उसके लिए तो अधर्म ही होता है। श्रावक उपेक्षा करे तब साधु मंदिर के जीर्णोद्धार, देखभाल में हस्तक्षेप करे तो यह अपवाद मार्ग है ।

❖ जो गीतार्थ नहीं है, जिसे गुरूभगवंत ने देशना देने का अधिकार दिया नहीं है, वह यदि व्याख्यान दे और उससे हजारों लोग धर्म को पाएँ, तो भी यह उसके लिए अधर्म ही होता है ।

❖ बिना अधिकार के शास्त्र पढ़नेवाला साधु भी प्रायश्चित का भागीदार बनता है ।

❖ पच्चक्खाण भी स्व-पर दोनों के लिए हितकर हो तब तक ही उसका पालन करना चाहिए। यदि पच्चक्खाण का पालन करने के कारण हित के बदले अहित होता हो, तो पच्चक्खाण का पालन नहीं करना चाहिए। यही आराधना बनती है । इसीलिए पच्चक्खाण में आगार रखे गए हैं। (गीतार्थ गुरुभगवंत ही यह छूट देने का निर्णय कर सकते हैं, यह ध्यान में रखना चाहिए ।)

यदि परमात्मा के द्वारा बनाए गए पच्चक्खाण में भी छूट हो सकती है, तो अपने द्वारा बनाए गए संघ / संस्था के नियम परंपराओं को जड़ता से पकड़कर रखने का आग्रह, यह भी कदाग्रह ही कहलाता है। यह तात्त्विक धर्म नहीं बन सकता है। स्व-पर के कल्याण का लक्ष्य प्रधान करके, इसे बदलने की तैयारी रखनी ही चाहिए।

❖ रक्षाबंधन आदि लौकिक त्यौहारों को धर्म मानकर मनायें तो सम्यक्त्व में अतिचार लगता है ।

❖ मिथ्यात्व का एक कार्य है कि वह देव में कुदेव की बुद्धि करवाता है, कुदेव में देव की बुद्धि करवाता है ।

❖ कदाग्रही अन्य धर्मियों को अरिहंत परमात्मा में 'कुदेव' दिखते है, वे उनकी निंदा करते हैं, यह मिथ्यात्व है ।

❖ सर्वज्ञ वीतराग के अलावा जगत में कोई भी देव (भगवान) नहीं हैं। दूसरे को भगवान मानना यह मिथ्यात्व है । कई लोग सभी भगवान को एक जैसा ही मानते हैं, यह हास्यास्पद है । पानी-दूध-अमृत को समान नहीं माना जा सकता, इसी तरह सभी देवों को समान नहीं माना जा सकता । अरिहंत के साथ दूसरे देवों की तुलना भी नहीं कर सकते है । इसका विस्तृत वर्णन-कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. ने 'वीतराग स्तोत्र' नामक ग्रंथ में किया है ।

❖ सम्यक्त्वी देव, चौथे गुणस्थानक पर हैं । शासन की रक्षा, प्रभावना धर्माराधना में सहायता करनेवाले हैं । इसलिए इनकी उचित भक्ति की जाती है, यह तो ठीक है, पर इनको भगवान नहीं माना जा सकता है । अरिहंत की उपेक्षा करके, समकिती देव की भक्ति करे, तो उसे सम्यक्त्व का अतिचार लगता है ।

❖ देव की भक्ति से कार्यसिद्धि होती है, और अरिहंत की भक्ति से नहीं होती है, ऐसा मानना, यह भी मिथ्यात्व ही है । इस जगत में कोई ऐसा कार्य नहीं है, जो अरिहंत की भक्ति से सिद्ध न हो । जो जिनभक्ति से न हो सके और दूसरे किसी से सिद्ध हो, यह तो असम्भव है ।

प्रश्न - पर हमारा अनुभव तो ऐसा है कि मिथ्यात्वी या समकिती देव की भक्ति से हमारे कार्य सिद्ध हो जाते है, और अरिहंत की भक्ति से कुछ हुआ ही नहीं ।

उत्तर - (१) देव की भक्ति करनेवाले सभी के सभी कार्य सिद्ध हुए हों, ऐसा कभी नहीं होता है, तो फिर देवकी भक्ति से ही कार्य हुआ, ऐसा कैसे कहा जा सकता है ? हो सकता है कि पुण्य से ही हुआ हो, कौए का बैठना और डालका गिरना इस न्याय से देव की भक्ति करने पर सहज ही पुण्य उदय में आ गया, लगे ऐसा कि देव की भक्ति से ही हुआ ।

(२) अरिहंत की श्रद्धापूर्वक भक्ति करने वाले के अनेक कार्य सिद्ध हुए हैं, ऐसे अनेकों दृष्टांत हैं । अनेक तीर्थो के अनेक चमत्कार प्रसिद्ध हैं ही । तो फिर अरिंहत की भक्ति से कुछ नहीं हुआ, ऐसा कैसे कह सकते हैं ? श्रद्धा पूर्ण होनी चाहिए, साथ ही धीरज भी होना चाहिए, तभी भक्ति के प्रभाव का अनुभव होगा ।

(३) अभी पंचम काल है, मिथ्यात्वी देवों का बल ज्यादा है । खुद के प्रभाव को बढ़ाने के लिए वे थोड़ी भक्ति करनेवाले पर खुश हो जाते हो और उनकी इच्छाओं को पूरी करते हों यह भी सम्भव है । पर यह समझ लो कि इतने मात्र से वे बहुत शक्तिशाली हैं ऐसा सिद्ध नहीं होता हो । और इसी कारणसे उनकी भक्ति करने से कभी कोई अप्रत्याशित लाभ होता हो, तो भी मिथ्यात्व का बंध, संसारवृद्धि इत्यादि बहुत बड़े नुकसान भी होते हैं । इसलिए यह नहीं करना ही ठीक है। जैसे स्वादिष्ट जहर वाला लड्डू नहीं खाया जा सकता है, वैसे ही यदि इच्छित की प्राप्ति हो रही हो, तो भी अरिहंत की उपेक्षा करके, अन्य देवों की भक्ति नहीं करनी चाहिए ।

❖ गुरू की उपेक्षा करके स्वयं की भक्ति करने वाले पर सच्चा शिष्य कभी प्रसन्न नहीं होता है ।

❖ मिथ्यात्व का एक कार्य है, सुगुरू में कुगुरू की बुद्धि कराता है, कुगुरू में सुगुरू की बुद्धि कराता है ।

❖ जो (१) महाव्रतों का सुव्यवस्थित पालन करे और

(२) परमात्मा के वचन से विरूद्ध बोले नहीं ।

ये गुरू ही सुगुरू हैं, वंदनीय हैं, दूसरे को गुरू मानकर वंदन नही करना चाहिए ।

❖ अवसर्पिणी काल, कम संघयण आदि कारणों से संयम का पालन बहुत कठिन हो गया है । शत प्रतिशत प्रभु की आज्ञा का पालन करीब करीब असंभव हो गया है । छोटे-छोटे दोष सबके अन्दर रहने वाले ही हैं,

इस कारण से किसी भी साधु को कुगुरू-अवंदनीय नहीं कहा जा सकता, यदि ऊपर कहे हुए दो गुण उनमें हों। और जो महाव्रत पालन करने में शिथिल बन गए हों, निष्ठुर बनकर भयंकर दोषों का सेवन करते हों, तो यह जानते हुए भी, मात्र साधु का वेश होने से 'हमसे तो अच्छे है'' ऐसा मानकर वंदन नहीं किया जा सकता है। ऐसी शिथिलता जानने के बाद वंदन करने वाले को लाभ तो नहीं होता है, बल्कि असंयम को पोषण देने से कर्म बंधता है।

❖ उपवास का पच्चक्खाण करनेवाला, एक बार खा ले, तो यह जानने के बाद, ''तीन बार खाने वाले हमारे से अच्छे हैं'' ऐसी प्रशंसा का पात्र नहीं बनता है, क्योंकि वह ली गई प्रतिज्ञा का भंग करता है। इसी तरह साधु बनने के बाद यदि महाव्रतों का भंग करे, तो गृहस्थ से कम पाप करते हो, फिर भी वंदनीय नहीं होते हैं। उपदेशमाला में धर्मदासगणिजी म. सा. ने कहा है, ''साधुवेश में भ्रष्ट होने से तो श्रावक बनना ही अच्छा है।''

❖ यह ध्यान में रखना चाहिए कि हर साधु को देखकर शिथिलता की शंका नहीं करनी चाहिए, श्रद्धापूर्वक वंदन करना चाहिए। इसमें लाभ ही है, परंतु किसी की शिथिलता प्रसिद्ध हो, और आप जानते हों, तो फिर वंदन नहीं किया जा सकता है।

❖ जो परमात्मा के वचन के विरूद्ध बोलते हैं (जैसे कि प्रभुपूजा में हिंसा करने से पाप बंधता है), उसके आचार कितने भी अच्छे हों, तो भी उन्हे सुगुरू मानकर वंदन या भक्ति नहीं करनी चाहिए। उनका औचित्य करना पडे यह अलग बात है।

❖ मात्र सामाचारी अलग हो, समुदाय अलग हो, इतने मात्र से कुगुरू नहीं बन जाते हैं। इस कारण से किसी को कुगुरू मानना, उन्हे वंदन करने का निषेध करना, वहोराने के लिए मना करना, ऐसा उपदेश देना, ये सभी मिथ्यात्व ही हैं, क्योंकि सुगुरू में कुगुरू की बुद्धि है।

❖ मिथ्यात्व का एक कार्य है,
हेय में उपादेय की बुद्धि कराता है ।
उपादेय में हेय की बुद्ध कराता है ।

❖ जगत में ३ प्रकार के पदार्थ हैं ।
(१) उपादेय - ग्रहण करने योग्य - सम्यक्त्व, विरति इत्यादि ।
(२) हेय - त्याग करने योग्य - राग, द्वेष, मिथ्यात्व इत्यादि ।
(३) ज्ञेय - मात्र जानने योग्य - धर्मास्तिकाय इत्यादि ।

❖ वर्तमान काल की परिस्थिति ऐसी है कि, जिसे परमात्माने पाप कहा है, हेय कहा है, उसके लिए आपके मन में हेयबुद्धि नहीं रही, पर समाज जिसे हेय मानता है, जो पाप करने वाला समाज में निंदनीय बनता है, उसके लिए ही आपके मन में हेयबुद्धि रहती है ।

जैन होकर भी भोजन समारोह में कोई आलु की सब्जी बनाए, तो समाज उस पर थूकता है- ‘‘अरे ! जैन होकर भी जमीकंद खिलाया।’’ इसलिए प्रायः जैनों के भोजन समारोह में आलु देखने को नहीं मिलते जबकि बर्फ, आइस्क्रीम, रात्रिभोजन इत्यादि भी अभक्ष्य होने पर भी ऐसा करने वालों का समाज तिरस्कार नहीं करता है, और इसलिए ऐसा पाप करने से कोई डरता नहीं । वास्तविकता यह है कि ‘‘यह अभक्ष्य है, यह खाने से पाप बंधता है ।’’ ऐसा कई लोग मानते ही नहीं हैं।

❖ पाप तो पाप है, सारी दुनिया करे तो भी पाप मिट नहीं जाता है ।

❖ समकिती जीव, रात्रिभोजन करे, यह कभी संभव है, पर रात्रि-भोजन को पाप नहीं माने, छोड़ने जैसा नहीं माने, यह असम्भव है ।

❖ लौकिक शास्त्रों में भी रात्रिभोजन को नरक का द्वार कहा गया है, लगभग कोई भी पशु-पक्षी रात को खाते नहीं है । रात्रिभोजन से आरोग्य को नुकसान और भवांतर में दुर्गति ये दो नुकसान हैं, तो भी रात्रिभोजन बंद करने का मन क्यों नहीं होता है ?

❖ साधु भगवंतो को ५ महाव्रत के साथ ही, छठे रात्रिभोजन त्याग का व्रत आजीवन दिया जाता है ।

❖ विवाहादि प्रसंग में रात्रिभोजन करने से

(१) सामूहिक रात्रिभोजन होने से अनेक गुणा पाप बंधता है ।

(२) रात का लाईटिंग-डेकोरेशन का निरर्थक खर्च और विराधना होती है ।

(३) रात में बची हुई रसोई फेंक ही देनी पड़ती है, भोजन बर्बाद ही होता है । सुरक्षा के सामने जोखिम खड़ा होता है ।

❖ सामूहिक रात्रिभोजन बंद करवाने से, उपर्युक्त नुकसान से बचने के उपरांत

(१) अजैनों को भी पता चलता है, कि जैन रात्रिभोजन नहीं करते हैं।

(२) घर में रात्रिभोजन चलता हो, तो भी समूह में नहीं हो, तो "रात्रिभोजन करने जैसा नहीं है" ऐसी बुद्धि संतानों में भी रहती है।

❖ मिथ्यात्व के ५ प्रकार शास्त्रकारों ने बताए हैं -

आभिग्रहिक, अनाभिग्रहिक, अनाभोगिक, आभिनिवेशिक और सांशयिक।

❖ एकेन्द्रिय इत्यादि जीव, जिन्हें मन ही नहीं होता है, जिसमें विचार करने की शक्ति ही नहीं होती है, और इस वजह से प्रभुवचन की श्रद्धा या समझ संभव ही नहीं है, ऐसे जीवों का मिथ्यात्व अज्ञान से उत्पन्न होने से अनाभोगिक मिथ्यात्व कहलाता है ।

❖ कई जीवों में गुण-दोष की परीक्षा करने की शक्ति ही नहीं होती है, और इस कारण से वे सभी धर्मो को समान ही मानते हैं । उन्हें गलत बातों पर भी "यह सच है" ऐसी गलत श्रद्धा होने के कारण यह मिथ्यात्व है । यदि उनका आग्रह दृढ़ न हो, कोई सच बात समझाए, तो समझने की, सुधरने की तैयारी हो- प्रज्ञापनीयता हो तो उसका मिथ्यात्व अनाभिग्रहिक (अभिग्रह - पकड़ न होने वाला) कहलाता है।

उन्हें प्रतिबोध करना सरल है । जिसे प्रभुवचन पर श्रद्धा पूरी नहीं है, तो भी गलत पकड नहीं है, तो उसे अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व है ।

❖ जो गलत मान्यता में पकड़ रखते हैं कि ‘‘मैं ही सच हूँ, दूसरे सभी गलत हैं’’ तो यह आभिग्रहिक मिथ्यात्व है ।

(अभिग्रह = पकड़)

परमात्मा के वचन से विरूद्ध मान्यता में पकड़ धारण करने वाले सभी आभिग्रहिक मिथ्यात्व हैं । इन्हें प्रतिबोध करना बहुत मुश्किल-लगभग असम्भव होता है ।

❖ प्रभुशासन का मुख्य सिद्धान्त है ‘स्याद्वाद’ अथवा ‘अनेकांतवाद’ । इसका अर्थ है कि प्रत्येक वस्तु कुछ अपेक्षा से विशिष्ट प्रकार की होती है, पर दूसरी अपेक्षा से दूसरे प्रकार की होती है ।

उदाहरण कोई व्यक्ति अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र भी है,
परन्तु अपने पुत्रों की अपेक्षा से पिता भी है,
अपनी पत्नी की अपेक्षा से पति भी है ।
इसी तरह एक ही व्यक्ति पिता, पुत्र और पति भी है ।

अन्य धर्म, वस्तु के इस गुणधर्म को पकड़ नहीं सके, और इसके कुछ ही अंश का पकड़कर ‘‘यह वस्तु इस प्रकार की ही है, दूसरे प्रकार की नहीं है’’ ऐसा कहते हैं, यह उनका एकांतवाद है ।

उदाहरण - हम मरनेवाले हैं, मनुष्य रूप में हमारा नाश होता है, इसलिए हम विनाशी हैं । परन्तु हमारी आत्मा का कभी नाश नहीं होता है, इसलिए आत्मरूप से हम अविनाशी, शाश्वत हैं । अर्थात् जैनधर्म की मान्यतानुसार हम विनाशी भी हैं और अविनाशी भी हैं । जबकि दूसरे धर्म इनमें से एक को ही पकडते है । बौद्ध इत्यादि धर्म सभी वस्तुओं को मात्र विनाशी ही मानते हैं । सांख्य इत्यादि धर्म सभी वस्तुको मात्र अविनाशी ही मानते हैं । इस तरह इनकी मान्यता पकड़वाली, एकांतवाली है, यह गलत है और इसे सच मानना, यह मिथ्यात्व है ।

❖ जिसे अपनी कुलपरंपरा से जो बात मिली है, उसे ही सच मानते हैं, उसकी परीक्षा करने के लिए तैयार ही नहीं होते हैं, कोई समझाए तो समझने के लिए भी तैयार नहीं होते हैं, तो (उनकी मान्यता सच भी हो, जैन धर्म को मानता हो तो भी) उसे आभिग्रहिक मिथ्यात्व ही कहा जाता है ।

उदाहरण - कई लोगों को कुल परंपरा से ही जैनधर्म मिला है साथ में ऐसी मान्यता भी मिली है कि प्रभुपूजा में हिंसा होने से पाप लगता है । चाहे कितने भी तर्कों से साबित कर दो कि यह बिल्कुल गलत है, तो भी वे इस बात को समझने के लिए तैयार नहीं होते हैं, यही कहते हैं कि "हमें जो हमारी परंपरा से मिला है वही सच है ।" यह भी आभिग्रहिक मिथ्यात्व है ।

प्रश्न - पर तर्क समझ सके, ऐसी हमारी तो बुद्धि ही नहीं है।

उत्तर - जिसके पास ऐसी बुद्धि नहीं है, उसे संविग्न-गीतार्थ गुरूभगवंत का अनुसरण करना चाहिए । "यह गुरू भगवंत संविग्न हैं-पापभीरू हैं, जानबूझकर गलत बोलें ऐसे नहीं हैं, स्वार्थ के लिए भी गलत नहीं बोलते हैं । और शास्त्रों का गहरा ज्ञान भी इनके पास है, इसलिए गुरू भगवंत ने बहुत विचार करके जो निर्णय किया है, वह सच ही है ।" ऐसा विचार करके गुरू के वचन के अनुसार करे तो शिष्य को मिथ्यात्व नहीं लगता है । (इसलिए पहले गुरू की संविग्नता-गीतार्थता की परीक्षा कर लेनी जरूरी है ।) ऐसा होता है कि दो संविग्न गीतार्थों के मत अलग-अलग भी हों, तब दोनो में से किसी को भी मानने वाले का सम्यक्त्व खंडित नहीं होता है, पर वहाँ दूसरे मत के प्रति असहिष्णुता, उसका आक्रामक खंडन नहीं होना चाहिए ।

❖ जिसे प्रभु के वचन सच है कि नहीं ? ऐसी शंका होती है, तो सांशयिक मिथ्यात्व है । एक भी प्रभुवचन पर ऐसी शंका करे, तो दूसरे सभी को मानने पर भी मिथ्यात्व आता है ।

❖ अज्ञानादि के कारण गलत मान्यता बंध जाती है, गलत प्ररूपणा हो जाती हैं, फिर पता चल जाए कि यह शास्त्रविरूद्ध है, तो भी अहंकारादि के कारण स्वयं की भूल कबूल नहीं करता, गलत बात छोड़ता नहीं है, तो आभिनिवेशिक मिथ्यात्व आता है। (अभिनिवेश-गलत बात को गलत जानने के बाद भी उसकी पकड़ ।)

❖ आभिनिवेशक मिथ्यात्व से बचना हो, तो अपने आपमें रट लो कि "मैं गलत हो सकता हूँ, मेरी भूल हो सकती है।" और भूल को सुधारने के लिए तैयार रहो । जो यह माने कि "मेरी भूल कभी हो ही नहीं सकती", तो उसमें आभिनिवेशिक मिथ्यात्व है ही, अथवा आएगा ही।

❖ किसी भी वाद को जड़ता से पकड़कर नहीं रखना चाहिए, गुण-दोष का विचार करने की तैयारी रखना, तो आभिग्रहिक मिथ्यात्व से बचा जा सकता है ।

❖ प्रभु और संविग्न गीतार्थ के वचन को श्रद्धा से स्वीकार ले, तो उसे सांशयिक मिथ्यात्व नहीं आता है ।



सम्यक्त्व

❖ सम्यक्त्व के प्रकार अनेक रीति से शास्त्रकारों ने बताए हैं। एक रीति से, तीन प्रकार का सम्यकत्व बताया गया है... रोचक, कारक और दीपक सम्यक्त्व ।

❖ रोचक सम्यक्त्व वह है जिसे परमात्मा के वचनों पर रूचि हो अर्थात् प्रभु के वचन अच्छे लगें, शायद इसका पालन न भी कर सके। यह बात चौथे गुणस्थानक की है, और इस ग्रंथ में सम्यक्त्व की जो बात है, वह ज्यादातर इस सम्यक्त्व की है ।

❖ कारक सम्यक्त्व वह है, जिसमें प्रभुवचन को संपूर्णरूप से जीवन में उतारे अर्थात् जिनाज्ञा का संपूर्ण पालन करे । सातवें गुणस्थानक पर विराजमान अप्रमत्त साधु को ही यह सम्यक्त्व होता है ।

❖ रोचक-कारक ये दो सम्यक्त्व अलग बताए गए है, यह बताते है कि मानना अलग है और करना अलग है। मानने पर भी करे नहीं, वह हर समय दंभ ही होता है ऐसा कहा नहीं जा सकता है। दर्शन मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से रूचि-श्रद्धा आती है, चारित्र मोहनीय कर्म का क्षयोपशम से करने का उल्लास आता है । जिसे दर्शन मोहनीय का क्षयोपशम होने पर भी चारित्र मोहनीय का क्षयोपशम न हो, वह मानते हुए भी करे नहीं, ऐसा हो सकता है। यही चौथे गुणस्थानक की भूमिका है। हमारे जीवन में निरीक्षण करने से पता चलता है कि, मानते हुए भी, करना संभव होने पर भी, करने का उल्लास ही पैदा न हो ऐसा कई बार होता भी है। जैसे उपवास करने जैसा लगता है, शक्ति भी है, फिर भी उपवास करने का उल्लास नहीं होता है। अनादि काल की संज्ञा / विषयपरवशता के कुसंस्कार जीव को प्रमाद में खींच लाते हैं, यह हम सबका अनुभव है ही ।

❖ तीसरा दीपक सम्यक्त्व है । जैसे दीपक दूसरों को प्रकाशित करता है, पर स्वयं के नीचे अंधेरा ही होता है, वैसे ही दीपक सम्यक्त्व वाला जीव, वक्तृत्वकला, देशनाशक्ति इत्यादि के द्वारा हजारों आत्माओ को प्रतिबोधित करता है, सम्यक्त्व दिलाता है, सर्वविरति भी दिलाता है, पर स्वयं का मिथ्यात्व पिघलता ही नहीं और इसलिए उसकी आत्मा का थोड़ा भी कल्याण नहीं होता । दूसरों को धर्म करवाने में उसके हित की भावना हो, तभी स्वयं की आत्मा को लाभ होता है । पर दीपक समकिती तो मात्र अहंकार से ही प्रेरित होकर परोपकार करता है, जिससे खुद को कुछ भी लाभ नहीं होता है ।

❖ एक तीर्थंकर की आत्मा जितने जीवों को प्रतिबोधित करती है, उससे अनंतगुणा जीवों को अभव्य आत्मा प्रतिबोध कर सकती है, क्योंकि उसका संसार अनंतगुणा है ।

❖ वर्तमान काल में भी देखा जाता है कि, बहुत सारे जीव 'आयोजन कुशल' 'कार्यकुशल' होते हैं, दूसरों को आराधना में जोड़ने के लिए, आराधना कराने में शूर होते हैं, पर इनको स्वयं आरधना करने का उल्लास जल्दी जगता नहीं है । यदि वे परोपकार की शुद्ध भावना से ही कार्य करते हैं, तो उनका भी कल्याण होगा; पर इनको भी अपने जीवन में आराधना करने का लक्ष्य रखना चाहिए ।

❖ दूसरी रीति से भी शास्त्रकारों ने सम्यक्त्व के ३ प्रकार बताए हैं - क्षायिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक ।

❖ मिथ्यात्व सम्यक्त्व का विरोधी है ।

सम्यक्त्व को पाने के लिए, मिथ्यात्व को दूर करना पड़ता है । मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यात्व आता है । इसलिए सम्यक्त्व को पाने के लिए, मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय को रोकना पड़ता है । इसी उदय को रोकने के तीन रास्ते हैं, क्षय, उपशम और क्षयोपशम । इसलिए सम्यक्त्व के तीन प्रकार हैं - क्षायिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक।

❖ जब मिथ्यात्व मोहनीय कर्म को आत्मा पर से संपूर्णरूप से साफ कर दिया जाए, तो वह 'क्षय' कहलाता है। क्षय होने के बाद कर्म का उदय होना संभव ही नहीं है और इसीलिए क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट होता है।

क्षायिक सम्यक्त्व :

प्रथम संघयण वाले मनुष्य ही पा सकते हैं ।

इसके आने के बाद कभी भी इसका नाश नहीं होता है, अंत में मोक्ष में पहुँचाकर ही रहता है ।

यह अत्यंत शुद्ध / निर्मल होता है, इसमें अतिचार नहीं लगता है ।

उसी भव में या अधिक से अधिक ३ या ४ (अपवाद में किसी को ५) भव में मोक्ष हो जाता है ।

❖ जब मिथ्यात्व मोहनीय कर्म आत्मा पर होने पर भी, उसे इस तरह दबा दिया जाता है कि इसका उदय हो नहीं सकता है, इसे 'उपशम' कहते हैं, तब औपशमिक सम्यक्त्व प्रगट होता है,

❖ औपशमिक सम्यक्त्व:

(१) एक अंतर्मुंहुर्त काल तक रहता है, फिर नष्ट हो जाता है ।

(२) विशुद्ध - निर्मल - अतिचार से रहित होता है ।

(३) चार गति के संज्ञि पंचेन्द्रिय जीवों को हो सकता है ।

(४) असंख्य बार आए-जाए ऐसा हो सकता है ।

(५) जीव को जब पहली बार सम्यक्त्व प्राप्त होता है तब औपशमिक सम्यक्त्व ही होता है ।

❖ जब मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय होता है, परंतु इसके प्रभावको इतना कम कर दिया जाता है कि यह स्वयं का फल दिखा नहीं सके, तब जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, इसे क्षयोपशम कहते है, और इसी समय क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है ।

❖ क्षायोपशमिक सम्यक्त्वः

(१) इसका काल १ अंतर्मुहूर्त से लेकर ६६ सागरोपम से कुछ अधिक है।

(२) इसमें मलिनता भी आती है, विशुद्धि भी होती है, इस तरह उतार-चढ़ाव हो सकता है, अतिचार लगता है, नाश भी हो सकता है।

(३) चारों गति के जीवो को होता है ।

❖ हमें यदि अभी सम्यक्त्व हो, तो भी क्षायोपशमिक सम्यक्त्व ही होता है ।

❖ सम्यक्त्व की तरह अपने क्षमादि गुण भी क्षायोपशमिक ही है, इसमें उतार-चढाव होना, अतिचार लगना, चला जाना आदि सम्भव है।

❖ क्षायोपशमिक भाव के गुणों को टिकाने के लिए एक चीज जरूरी है।

प्रेरणा - गुरूभगवंतया कल्याण मित्रों के द्वारा ।

आलंबन - दूसरे जो इन गुणों के मालिक हों उनका ।

वातावरण - अनुकूल परिस्थिति ।

❖ यदि वातावरण विपरीत मिले, तो क्षायोपशमिक गुण को टिकाना मुश्किल होता है । जहाँ सभी रात्रिभोजन करते हों, वहाँ चौविहार टिकाना मुश्किल है । इसलिए जिसे गुण टिकाना है, उसे विपरीत वातावरण का त्याग ही करना पड़ता है, और प्रेरणा लेते रहना पडता है, आलंबन खोजते रहना पड़ता है ।



पापभीरुता

❖ पाप का त्याग करना यह चारित्र है, पाप को पाप मानना, त्याज्य मानना, यह सम्यक्त्व है ।

❖ तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वातिजी महाराज साहब ने सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा है । जब तक सम्यगदर्शन नहीं होता है, तब तक मोक्षमार्ग का प्रारंभ नहीं होता है ।

❖ सम्यक्त्वी जीव, शरीर से पाप करे, तो भी उसका मन पाप में नहीं होता है, तीव्र आसक्ति नहीं करता है । इसका परमार्थ यही है कि सम्यक्त्वी जीव पाप करे तो भी इसका पक्षपात नहीं होता है, अर्थात "मैं जो कर रहा हूँ, यह मेरा अहित ही करने वाला है" इस प्रकार की समझ अंतःकरण में होती है, और इसीलिए उसे कर्मबंध कम होता है ।

❖ किसी गड्ढे को कूदकर पार करना हो, लेकिन कूदा नहीं जा सकता हो, इतना चौड़ा हो कि बीच में पैर रखना ही पड़े; और पैर रखने के लिए गर्म लोहे की पाट हो; तो उसके ऊपर कितनी देर तक पैर रखोगे? कम से कम देर तक ही रखोगे । मात्र अंगूठा रखने से ही काम चल जाता हो तो पैर नहीं रखोगे, और कम से कम समय के लिए रखोगे, १ सेकेंड रखने से काम चल जाता हो तो २ सेकेंड भी नहीं रखोगे... बराबर ? योगदृष्टि समुच्चय में हरिभद्रसूरि म. सा. कहते हैं कि समकिती जीव पाप करता है, यह सच है, पर यह पाप प्रवृति लोहे की धधकती हुई पाट पर पैर रखने (तप्तलोहपदन्यास) जैसी होती है। चारित्र लेने के लिए - सभी पापों से मुक्त होने के लिए वह जीव तरसता है, पर जब तक वह चारित्र नहीं ले सके, तब तक ही पाप करता है ।

❖ जिसे अपना पाप छोटा लगता है, अर्थात् पश्चात्ताप नहीं होता है, वह यदि प्रयाश्चित व्यवहार से करता है, तो भी पाप से शुद्ध नहीं होता है। जिसे अपना पाप बड़ा लगता है, अर्थात् तीव्र पश्चात्ताप होता है, परन्तु योग्य गुरू भगवंतो का संयोग न मिलने से वह व्यवहार से प्रायश्चित नहीं कर सके तो मृत्यु हो जाने के बावजूद भी वह पाप से शुद्ध हो जाता है, यह संभव है । हाँ, तीव्र पश्चाताप वाला जीव प्रायश्चित किए बिना नहीं रहता है, यह भली-भांति समझना चाहिए।

❖ छोटा काँटा भी यदि पैर में चुभ जाए और निकाला न जाए तो, पक जाता है पीब हो जाता है, पैर कटवाना भी पड़ता है । इस तरह एक छोटा भी पाप हो जाए और उसका प्रायश्चित नहीं किया जाए तो 'शल्य' बन जाता है, बहुत भयंकर दुःख देता है।

❖ "पाप करूँगा, तो समाज तिरस्कृत करेगा, सरकार सजा देगी" इस भय से पाप छोडे, तो वह मध्यम कक्षा का है, पाप करने का जिसका स्वभाव ही नहीं हो वह उत्तम कक्षा का है ।

❖ पाप भयंकर होने पर भी करना अच्छा लगता है, छोड़ना अच्छा नहीं लगता है तो, इसका कारण यह है कि पाप करने से तात्कालिक सुख मिलता है, पर उसके बाद मिलनेवाला महाभयानक दुःख नहीं दिखाई देता है ।

❖ साँप का डर लगता है, देखकर ही भागने लगते हो । साँप के नाम से ही डर लगता है, "साँप" ऐसी आवाज आए तो भागने लग जाते हो । साँप के खाली बिल से भी डर लगता है । कारण यह है कि साँप के साथ ही आपको मौत जुड़ी हुई दिखाई देती है, इस तरह पाप के साथ जुडी हुई दुर्गति देखना शुरू करो तो पाप से डर लगेगा ।

❖ पाप करते हुए भी जिसके हृदय में पाप का डर हो, उसे पाप का बंध होने पर भी, अनुबंध पाप का नहीं होता है । कर्म का बंध तो एकबार फल देकर चला जाता है, पर अनुबंध से तो परंपरा ही चलती है ।

(पाप का अनुबंध होता है, तो फिर से पाप करता है।) इसीलिए बंध से भी अनुबंध ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, बंध के द्वारा सामग्री मिलती है, अनुबंध द्वारा बुद्धि मिलती है। शालिभद्र को पुण्य का बंध होने से सामग्री तो अच्छी मिली ही, साथ में पुण्य का अनुबंध होने से सद्बुद्धि भी मिली। अवंतिसुकुमाल ने देवलोक में सुख मिलने की इच्छा से ही संयम किया और अनशन किया। फिर भी देवलोक का सुख, वास्तव में तो त्याज्य ही है, ऐसी समझ और परिणाम होने से अनुबंध अशुभ नहीं पड़ा। पाप करते समय राग हो, पसंद आये तो परिणाम अशुभ होने से बंध पाप का होता है, पर यदि अंदर ऐसा भाव हो कि "यह राग करने योग्य नहीं है" इस तरह राग के प्रति तिरस्कार हो, तो अनुबंध पाप का नहीं होता है।

❖ जिसे पाप का डर नहीं है, वह यदि पाप नहीं करे, तो भी उसके पापत्याग की कीमत ज्यादा नहीं होती।

❖ पाप को पापरूप मानना, यह सम्यक्त्व का स्वरूप है, यह हमने पहले कहा है। आपको अठारह प्रकार के पाप, पाप लगते हैं सही? आपकी संपत्ति बढ़े, तो परिग्रह का पाप भी बढ़ा, ऐसा लगता है सही? पैसा कमाने की सतत् इच्छा होती है, यह लोभ का पाप है, यह समझे हो कभी? स्वादिष्ट वस्तु जीभ को अच्छी लगती है, यह राग का पाप है, (फिर चाहे वह अभक्ष्य ना भी हो) ऐसा विचार कभी आता है? आत्मनिरीक्षण करने से पता चलेगा कि, कई पाप आपको पापरूप लगते ही नहीं हैं।

❖ जीभ की आसक्ति के कारण मंगु आचार्य मरकर गटर के भूत बने। कपड़े की आसक्ति के कारण ५०० शिष्यों के गुरू सुमंगलाचार्य अनार्य देश में - अनार्य कुल में जन्मे।

ऐसा राग आप जीवन में कैसे और कितना करते हो?

❖ संतानों को मात्र इहलोक की शिक्षा देनी, परलोक का मार्ग ही नहीं बताना, यह उसके भवोभव को बरबाद करने वाला बहुत बड़ा पाप है । क्या यह आपको पता है ?

❖ अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वालों को परमात्मा के वचन समझने में बहुत मुश्किलें आती हैं । इसलिए अपनी संतान को अंग्रेजी माध्यम में रखने वाले माता-पिता, अनंत पुण्य के उदय से जिस जीवने जिनशासन को पाया है, उसे जिनशासन से दूर कर देने का, दुर्लभबोधि करने का भयानक पाप कर रहे हैं । मात्र अपने 'स्टेटस' के कारण अपनी संतान को अंग्रेजी माध्यम में रखकर, उसका भवोभव बरबाद कर देने वाले को 'माँ' या 'बाप' किस तरह कहा जा सकता है ?

❖ अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने से बालक ''होशियार'' बनता है, यह बहुत बड़ा भ्रम है । अनेक अनुभवों से यह सिद्ध हुआ है कि मातृभाषा में पढ़ने वाले बालकों का ही पूर्ण विकास होता है ।
अंग्रेजी माध्यम में पढ़ने वाले भले ही अंग्रेजी फटाफट बोल लेते हों, पर व्यवहार में जड़ ही होते हैं ।

❖ पुत्रों को विरासतमें ऋण देकर जाना खराब है, विरासत में रोग देना इससे भी खराब है, पर विरासत में दोष-कुसंस्कार देना, यह सबसे खराब है ।

❖ आपकी संतानें, पूर्वभव में से कुसंस्कार-सुसंस्कार दोनो ही लेकर आई हैं । उनके सुसंस्कारों को जाग्रत करके उसे मोक्ष की ओर आगे बढ़ाते हो या कुसंस्कारों को जाग्रत करके उन्हें संसार में भटकाते हो, यह आपके हाथ में है ।

❖ जो माँ-बाप, अपनी संतानों को धर्ममार्ग पर नहीं चलाते हैं, वे अनंत पुण्य लेकर जिनशासन में जन्मे जीव को अनंत संसार के परिभ्रमण में गिराने का घोर अकृत्य कर रहे हैं । शास्त्रकार तो ऐसे माँ-बाप को अपनी संतानों के शत्रु ही कहते हैं । शिखर पर पहुँचने वाले मनुष्य

को धक्का मारकर खाई में फेंक देने जैसा यह घातक कृत्य है ।

❖ जो व्यावहारिक शिक्षा लगभग निरर्थक है, उसके पीछे लाखों रुपए खर्च करते हो, और बालक की जिंदगी के अति मूल्यवान वर्षों को नष्ट करते हो। और जो धार्मिक शिक्षा भवोभव काम में आनेवाली है, उसके लिए आपके पास समय ही नहीं है, और संपत्ति भी खर्च नहीं करनी है । है ना करूणता !



सम्यक्त्व की विशेषता

❖ सम्यक्त्वी जीव की एक विशेषता यह है कि चतुर्विध संघ में से किसी के भी दर्शन से वह आनंदित हो जाता है ।

❖ विशेषावश्यक भाष्य की टीका में मलधारी हेमचन्द्रसूरिजी म. सा. लिखते हैं कि साधु के दर्शन होने पर जिसे आनंद होता है, उसको ही पुण्यबंध / कर्मनिर्जरा होती है । बाकी केवल दर्शन से कोई लाभ नहीं होता है ।

जिन क्षेत्रों में साधु-साध्वीजी भगवंतों का विचरण बहुत कम है या नहीं है, उन्हें साधु-साध्वी के दर्शन हों या भक्ति का लाभ मिले तो अपार आनंद आता है, यह हमने देखा है । कईं बार ऐसा लगता है कि, आपको हर रोज साधु-साध्वी भगवंत के दर्शन होते हैं, इसलिए आपको कोई आनंद नहीं होता हैं । मात्र साधु-साध्वीजी ही नहीं, परिचित या अपरिचित श्रावक मिले तो भी समकिती को आनंद होता है, साधर्मिक के प्रति भी उसके हृदय में असीम प्रीति होती है । राजस्थान में हमने यह अनुभव किया है कि कोई साधर्मिक आया हो, तो उसकी भक्ति करने के लिए आतुरता होती है, उसे जाना हो तो भी भोजन कराए बिना तो जाने ही नहीं देते, और भोजन कराने में भी शाही ठाट से भक्ति करते हैं ।

❖ जैसे साधु या साध्वीजी भगवंत मिले तो 'मत्थएण वंदामि' कहा जाता है, वैसे ही श्रावक को भी आपस में प्रणामादि रूप नमस्कार करना होता है। प्रवचन में आने वाले श्रावकों को भी पूर्व में आए हुए श्रावकों को नमस्कार करके बैठना चाहिए। चातुर्मास में विराजमान साधु भगवंत को मिलने, दूसरे गाँव से कोई साधर्मिक आया हो, तो उसे देखकर आपको आनंद होता है ? ''साधार्मिक भक्ति का लाभ मिला,'' ऐसा भाव आता है ? आपको पता नहीं हो, पर वह व्यक्ति मुमुक्षु हो,

आजीवन चतुर्थ व्रतधारी हो, घोर तपस्वी हो, सबकुछ संभव है । अरे ! कोई साधर्मिक तीर्थंकर का जीव भी हो, कोई गणधर का जीव हो, और अंत में तो सभी सिद्ध के जीव तो हैं ही ! इसलिए किसी भी साधर्मिक के दर्शन से आनंद तो होना ही चाहिए !

❖ सम्यक्त्वी की दूसरी विशेषता है कि, उसे हमेशा स्व-पर की आराधना वृद्धि में ही आनंद होता है । दूसरे की आराधना अगर बढ़े तो क्या आपको आनंद होता है ? ४-५ मित्रों ने साथ में आराधना शुरू की, तबियत आदि के कारण आपकी आराधना रुक जाए, तो फिर दूसरे की आराधना के लिए आपके मन में कैसा भाव होगा ? उसकी आराधना जारी रहे तो आनंद या....?

❖ आपने कोई आराधना करवाई, उदाहरण के लिए अठ्ठम करवाए । ज्यादा संख्या हुई और रिकार्ड बन गया । अब २-४ वर्ष के बाद, दूसरा कोई यही आराधना कराए, तब उसकी संख्या आप से ज्यादा हो, ऐसी इच्छा करते हो या कम हो ऐसी ?

❖ आपने किसी तपश्चर्या के पारणे का लाभ लिया हो, आपकी धारणा २०० से २५० तपस्वी की हो, और इस हिसाब से खर्च का अनुमान हो । अत्यन्त उल्लास के कारण संख्या बढ जाए- दोगुनी -तीनगुनी हो जाए (खर्च को वहन करने की आपके पास शक्ति हो) । फिर आपके मन में कैसा भाव होगा ? ''अब संख्या न बढ़े तो अच्छा'' ऐसा तो नहीं ना ?

❖ व्याख्यान या प्रतिक्रमण में जगह 'हाउसफुल' हो गई हो, फिर भी लोगों का आना जारी ही हो, इस कारण आपको थोड़ा सिकुड़कर बैठना पडे., तो फिर क्या होता है ?'' अब कोई नहीं आए तो अच्छा'' ऐसा तो नहीं ना ? सम्यक्त्व की हाजरी में जीव के परिणाम हमेशा सभी की आराधना में सहायक बनने के ही होते हैं ।



सम्यक्त्व के ५ लक्षण

❖ सम्यक्त्व के ५ लक्षण शास्त्रकारों ने बताए हैं ।
शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिक्य ।
इसकी प्राप्ति उल्टे क्रमसे होती है, अर्थात् पहले आस्तिक्य आता है, फिर अनुकंपा इत्यादि - यह महोपाध्याय यशोविजजयजी म. सा. ने योगविंशिका की टीका में बताया है ।

(१) आस्तिक्य :

जिनवचन कभी गलत होते ही नहीं हैं, ऐसी अडिग श्रद्धा-यही आस्तिक्य है ।

❖ 'मन न समझे' तो भी प्रभु का वचन सच ही है, ऐसी श्रद्धा, यही आस्तिक्य है ।

❖ दुनिया के ज्यादातर लोगों को स्वयं को मिली हुई संपत्ति कम ही लगती है, पर किसी को भी अपनी बुद्धि कम नहीं लगती है।

❖ सभी के जीवन में एक संविग्न गीतार्थ गुरू भगवंत तो होने ही चाहिए, जिसके पास बिना किसी तर्क के शरणागति स्वीकार हो । मतलब कि, उनकी बात अगर नहीं समझ में आए, तो भी स्वीकार कर ही लें ।

(२) अनुकंपा :-

अनुकंपा दो प्रकार की है, द्रव्य अनुकंपा और भाव अनुकंपा । पापी जीवों के ऊपर करूणा यह भाव अनुकंपा है ।

❖ हमसे निचली कक्षा के जीवों के प्रति द्वेष या तिरस्कार हो, तो हमारा गुण भी तात्त्विक नहीं है, इतना ही नहीं, उसका प्रणिधान भी शुद्ध नहीं है ।

❖ दूसरे के दोष के कारण, उसके प्रति तिरस्कार यह अपने गुणों का अहंकार है ।

❖ जिन गुणों का अहंकार होता है, उन गुणों का नाश हो जाता है। यदि किसी दोष के कारण हम किसी की निंदा करते हैं, तो वह दोष हमारे अन्दर आ जाता है।

❖ दोष का तिरस्कार करना है, दोषी का नहीं, दोषी के ऊपर तो करूणा करनी है।

❖ पापी के दोषों का नाश हो, ऐसी भावना करनी चाहिए। उसे पाप से रुकने की प्रेरणा करनी चाहिए। इसके लिए प्रोत्साहन देना / सहायता करनी चाहिए, जितना करे उसकी अनुमोदना करनी चाहिए। यह भाव अनुकंपा है।

❖ जो पाप आप कल तक करते थे, वह पाप शायद आपने अब छोड़ दिया हो, इस कारण से आप, आज उस पाप करने वाले के ऊपर तिरस्कार कैसे कर सकते हो ?

❖ यदि किसी के एक दोष को भी माफ नहीं कर सकते हैं, तो फिर परमात्मा हमारे अनंत दोष को कैसे माफ करेगें ?

❖ सात व्यसन में लगे जीवों के ऊपर भी सर्वगुणसंपन्न परमात्माने या बहुगुणसंपन्न महापुरूषों ने भी धिक्कार नहीं किया, करूणा ही बरसाई है। तो फिर एकाध-गुणों के स्वामी आप बन गए हो तो इस कारण से दूसरे जीवों पर धिक्कार कैसे कर सकते हैं...?

❖ कितने भी पाप करने वाले पापी जीव हमारे पास आते हैं, तो भी हमें उन्हें वात्सल्य ही देना है। वे हमारे पास आते हैं, यह भी एक बड़ा गुण है। कई लोगों की ऐसी गैरसमझ होती है कि "महाराज साहब ऐसे पापियों को प्रोत्साहन देते हैं"। परन्तु वास्तव में तो हम उन्हें पाप छोड़ने के लिए ही उत्साहित करते हैं।

❖ द्रव्य- अनुकंपा से थोड़े दुःखों का नाश होता है, भाव अनुकंपा से भवो-भव के दुःखों का नाश होता है। इसलिए भाव - अनुकंपा बेहतर है।

❖ अपने संपर्क में आने वाले सभी पात्र जीवों को धर्म देने की, आत्मकल्याण के रास्ते पर आगे बढ़ाने की भावना, सम्यक्त्वी जीवों को होती है। आपको अपने परिवार, नौकर - चाकर को धर्म प्राप्त करवाने की भावना तो है ना ?

❖ जो दूसरों को धर्म बताते हैं, उन्हें भवांतर में धर्म बताने वाला मिलता रहता है ।

❖ जिसे जगत के सभी जीवों को तारने की प्रकृष्ट करूणा (भाव-अनुकंपा) का भाव होता है, वह तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाता है । जिसे अपने आसपास रहे जीवों को तारने की भावना होती है, वह गणधर बनकर मोक्ष में जाता है । जिसे मात्र अपने आपको ही तारने की भावना होती है, वह सामान्य केवली बनता है ।

❖ दुःखी जीवों को देखकर उसे दुःखमुक्त करने की भावना, यह द्रव्य अनुकंपा है ।

❖ चरमावर्त में प्रवेश का प्रथम लक्षण है, दुःखी जीवों के ऊपर अत्यंत दया का भाव ।

ऐसे जीव दुःखी के दुःख दूर नहीं कर सकते हैं, यह अलग बात है, पर उसके दुःख के प्रति संवेदनशीलता तो होती ही है । जिस गृहस्थ का हृदय दूसरों का दुःख देखकर वेदना का भी अनुभव नहीं करता है, उसके चरमावर्त में प्रवेश के लिए शंका रहती है, उसकी धर्म के उपदेश की योग्यता में भी शंका है ।

❖ दया तो समुद्र है, जिसमें सभी धर्मरूपी नदियाँ आकर मिलती हैं।

❖ वर्षों से आपके यहाँ नौकरी करनेवाले नौकर को भी कभी सहानुभूतिपूर्वक पूछा है कि तुझे कोई दुःख तो नहीं है ना ? उसके जीवन में कोई आपत्ति आ जाए, कुछ जरूरत हो, तो दूसरे के पास नहीं जाना, गलत रास्ते पर नहीं जाना, मुझसे ही मांगना ऐसा आपने कह दिया है सही?

❖ गर्मी के दिनों में दूध देने आया हुआ व्यक्ति पसीने से तरबतर हो रहा

हो, उसे दो मिनिट ठंडक में बैठने का या ठंडे पानी का पूछते हो ? ठंड में ठिठुरते हुए और बारिश में भीगते हुए गरीबों-तिर्यंचों को देखकर आपका हृदय कुछ संवेदना का अनुभव करता है ? भूकंप - बाढ - सुनामी-अकाल की आपत्ति में लाखों लोग बेघर हो जाते हैं, उनके दुःख देखकर आपको कुछ वेदना होती हैं ? यदि इन सभी प्रश्नों के जवाब 'ना' में हो, तो यह समझना चाहिए कि अभी आप धर्म पाने के योग्य ही नहीं बने हो ।

दुःखी जीवों के प्रति दयारूपी मानवता, ये तो शरीर के वस्त्र हैं, इन वस्त्रों के बिना, धर्म के अनुष्ठान रूपी अलंकार शोभित होने वाले नहीं हैं ।

❖ आपके नौकर ने, ३० दिन काम किया हो तो महीने के अंतिम दिन शाम को ही पगार पाने का उसे अधिकार है, उसे ६-७ दिनों तक नहीं देकर टालना, यह एक प्रकार की निष्ठुरता नहीं है क्या?

❖ अखबार / टीवी में आने वाले समाचारों ने आपकी संवेदनशीलता को नष्ट कर दिया है । हजारों व्यक्ति की मौत के समाचार आप आराम से चाय पीते हुए पढ़ सकते हो, यह इसका सबूत है ।

(३) निर्वेद :-

सम्यक्त्व का तीसरा लक्षण है निर्वेद, अर्थात् संसार से वैराग्य ।

❖ नरक - तिर्यंच के दुःखों से वैराग्य हो, तो यह कोई नई बात नहीं है, क्योंकि दुःख तो किसी को भी अच्छा नहीं लगता है । यदि सुख-सामग्री भरपूर हो, तो भी संसार असार ही है, इसमें से छूटने जैसा ही है, ऐसी बुद्धि ही निर्वेद है, सच्चा वैराग्य है।

❖ जेल में कैद व्यक्ति को जैसे जेल से छूटने की तीव्र इच्छा होती है, वैसे ही समकिती को संसार से छूटने की तीव्र इच्छा होती है।

❖ सामायिक / पौषध जब पूरे हों, तब "अब पुनः अविरति में जाना पड़ेगा" इसका दुःख होता है या "आह, छूट गए !" ऐसा भाव होता

है? यदि छूटने का ही मन हो, तो समझें कि संसार से वैराग्य नहीं हुआ है ।

❖ शरीर में साढ़े तीन करोड रोम हैं, प्रत्येक रोम में धधकती हुई लोहे की सुई कोई एक साथ चुभा दे, तो कितनी वेदना होगी ? उससे भी आठ गुणी वेदना, गर्भ में होती है, और अनंतगुणी वेदना जन्म के समय होती है । ऐसे जन्म-मृत्यु से भरे हुए संसार में, सुख कैसे माना जा सकता हैं ?

(४) संवेग :-

चक्रवर्ती या इंद्र के सुख को पाने की नहीं (वह तो दुःखरूप ही लगता हो) मात्र मोक्ष सुख को पाने की ही इच्छा हो - यह संवेग-सम्यक्त्व का दूसरा लक्षण है ।

❖ संसार में सुख है ही नहीं, मात्र इसका भ्रम ही होता है । जो वस्तु/ व्यक्ति एक परिस्थिति में सुख देते हैं, वही वस्तु / व्यक्ति अलग परिस्थिति में दुःख देते हैं। इसलिए वास्तव में वस्तु या व्यक्ति में सुख है ही नहीं ।

❖ जो सुख कर्म के अधीन है, वह वास्तव में दुःख ही है ।

❖ संसार का सुख दुःखमिश्रित ही होता है। दुःख के बिना अकेला सुख संसार में किसी को भी नहीं मिलता है । हजारों सुखों के बीच एक दुःख भी हजारों सुखों की मजा बिगाड़ देता है ।

❖ संसार के सुख विपाककटुक है । ज़हरवाला लड्डू, खाने में तो मीठा लगता है, पर बादमें मौत लाता है । इसी तरह विषयसुख भोगने में आनंद तो आता है, पर भयंकर कर्म बंधवाकर बाद में दुःख लाता है। एक छोटे से सुख को भोगने के लिए, पहले सैकड़ों पाप करने पड़ते हैं ।

उदाहरण - १ कप चाय पीनी हो, तो उसके लिए पानी लाना पड़ेगा, जिसमें असंख्य अप्काय के जीव मरते हैं । गैस चलाना पड़ता है,

जिसमें असंख्य तेउकाय के जीव मरते हैं, साथ ही वायुकाय के जीव भी मरते हैं। चाय पीने में राग पुष्ट होता है, उसका पाप। उतने पापों के बाद फिर २ मिनिट के स्वाद का सुख मिलता है।

❖ इंद्रिय के विषय में सुख तिल के समान है। बादमें आने वाला दुख मेरू पर्वत के समान है।

❖ अपनी सामग्री में होने वाली आसक्ति के पाप के कारण, असंख्य देव मरकर हर क्षण एकेन्द्रिय में जाते हैं।

❖ संगीत के राग के कारण हिरण शिकार का भोग बनता है। स्वाद की आसक्ति के कारण मछली जाल में फँस जाती है। एक इंद्रिय की आसक्ति में फंसे हुए जीव मौत को आमंत्रण देते हैं, तो पाँचों इंद्रियों के विषय में गले तक डूबे उए मनुष्य की क्या हालत होगी ?

❖ संसार का कोई भी सुख हमेशा रहने वाला नहीं हैं।
'अंत में तो चला ही जायेगा' यह विचार भी जीव को दुःखी बना देता है।

❖ देवों के पास साधन-सामग्री बहुत होते हैं। फिर भी तृष्णा, दूसरों की ईर्ष्या, दूसरों का खींच लेने की लड़ाई इत्यादि दुःखों से देव भी जलते ही रहते हैं। और अंत में ''मुझे यह सब छोड़कर चले जाना है'' इस भय से वे दुःखी हो जाते हैं।

❖ माता-पिता-घर का त्याग तो सामान्य है, अनुकूलता का त्याग ही सच्चा वैराग्य है।

❖ संसार से जिसे वैराग्य है, अवसर मिलते ही वह संसार छोड़कर चल निकलता है। जरा सा निमित्त मिला और धन्नाजी, वज्रबाहु इत्यादि संसार को लात मारकर चल निकले।

(५) शम -

सम्यक्त्व का प्रथम लक्षण है शम - उपशमभाव।

❖ जहाँ किसी भी वस्तु, व्यक्ति या घटना से सुख या दुःख न हो, सर्वत्र समान माध्यस्थ भाव हो, वह समता है ।

❖ जहाँ शत्रु द्वारा किए जाने वाले उपसर्गों को सहन किया जाए, यह क्षमा तो है पर इसमें 'यह शत्रु है" ऐसा भाव आए तो यह समता नहीं है । समता यह है कि जहाँ कोई शत्रु भी नहीं लगता और कोई मित्र भी नहीं लगता ।

❖ क्षपकश्रेणि में उत्कृष्ट समता होती है । तब, संसार-भी मोक्ष के समान लगता है, मोक्ष की इच्छा भी नहीं रहती है ।

❖ अपने ऊपर अपराध करने वाले जीव के लिए मन से भी खराब नहीं सोचना यह उपशम भाव, सम्यक्त्व का लक्षण है ।

❖ दस प्रकार के साधु धर्म बताए गए हैं इसमें पहली क्षमा है, साधु का नाम ही 'क्षमाश्रमण' है ।

❖ जो क्रोध, १ करोड. पूर्व (१ पूर्व = ७०५६० अरब वर्ष) के संयम को निष्फल बना सकता है, इतना बलवान है, ऐसे क्रोध को जीतना ही चाहिए ।

❖ रास्ते में बिना देखे चले और पत्थर से ठोकर लगी तो गुस्सा नहीं करेंगे, क्योंकि हमें अपनी ही गलती दिखती है कि "बिना देखे चले, इसीलिए चोट लगी" । किन्तु इसी तरह अगर रास्ते में किसी बीड़ी के टुकडे पर पैर पड़ जाए, तब गुस्सा आ जाता है, कि "किसने बीड़ी फेंकी है ?" क्योंकि हमें फेंकने वाले की गलती दिखती है, हमारी गलती नहीं दिखती, कि "बिना देखे चले ।" सार यह है कि, यदि दूसरे की गलती दिखती है, तो गुस्सा आता है; यदि अपनी भूल दिखेगी, तो गुस्सा नहीं आएगा। इसलिए यदि क्रोध से बचना हो, तो हर प्रसंग में अपनी ही भूल देखना सीख जाओ । यदि कभी कोई भूल न भी दिखे, तो भी हमने जो अपेक्षा रखी कि-सामने वाले व्यक्ति को यह करना चाहिए यह नहीं करना चाहिए, यही हमारी भूल है । अंत

में हमारे पूर्वोपार्जित दूष्कृत, (जिससे अशुभ कर्म बंधा और उसके उदय से दु:ख आया) यह तो हमारी भूल है ही ।

❖ गुनाह करने पर कोर्ट जेल की सजा दे, जेलर हंटर से मारे, तो भी जेलर के उपर गुस्सा नहीं आता है, क्योंकि पता होता है, कि जेलर तो कोर्ट के द्वारा दी गई सजा का अमल ही कर रहा है । इसी तरह कोई व्यक्ति यदि हमें परेशान करता है, तब वास्तव में तो वह हमारे द्वारा पूर्व में किए हुए दुष्कृत्यों की कर्मसत्ता द्वारा दी गई सजा का अमल ही कर रहा है । इसमें उसके ऊपर गुस्सा होने से क्या फायदा ?

❖ जेलर के ऊपर यदि गुस्सा करो, तो सजा बढ़ जाती है । और अगर शांति से सहन करो, अच्छा व्यवहार करो, तो सजा माफ भी हो जाती है । इसी तरह यदि प्रतिकूलता में गुस्सा करे, तो नया कर्म बंधता है और प्रतिकूलता बढ़ती है । यदि समतापूर्वक सहन करे, तो कर्म कट जाते हैं ।

❖ जब कहीं पीव हो जाता है, डाक्टर को दिखाकर पीव निकलवाते हो, तब भंयकर वेदना होती है, चक्कर आ जाते हैं । तो भी डॉक्टर पर गुस्सा नहीं आता है, बल्कि डॉक्टर हमें उपकारी लगता है, "मेरा पीब साफ कर रहा है"। तो फिर, जब अपने ही कर्म को कोई उदय में लाता है, तब दु:ख तो आता ही है, पर यदि हम ऐसा विचार करें कि "यह तो मेरे कर्म को साफ कर रहा है, उपकारी है" तो गुस्सा नहीं आयेगा। गजसुकुमाल के सिर पर अंगारे रखे गए, तो भी उन्होंने यही विचार किया और अंत में केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।

❖ क्रोध को जीतने का दूसरा उपाय है, सामने वाले की कर्मपरवशता को सोचना । यह व्यक्ति कुछ नहीं कर रहा है, बल्कि उसका मोहनीय कर्म इससे यह काम करवा रहा है. यह सोचना चाहिए ।

❖ दारू पीया हुआ व्यक्ति कुछ भी बोलता रहता है, तो भी गुस्सा नहीं आता है, बल्कि सहानुभूति होती है । "बेचारे को पता ही नहीं है कि

वह क्या कर रहा है। दारू ही उसे बुलवा रही है।" छोटा बच्चा मस्ती करे, मारामारी करे.... तो भी गुस्सा नहीं आता है, क्योंकि पता है, कि वह नादान है। इसी तरह कोई भी व्यक्ति अनुचित व्यवहार करे, तब ऐसा ही सोचो कि "यह उसका मोहनीय कर्म ही करवा रहा है" तो गुस्सा नहीं आयेगा, करूणा ही होगी।

❖ हमें आया हुआ दुख भी वास्तव में प्रभु की कृपा ही है, इससे भी कोई लाभ ही होने वाला है, यह देखना हमें आ जाए, तो फिर चाहे कैसी भी परिस्थिति हो, फिर भी प्रसन्नता टिकी रहेगी।

❖ "जो होता है, वह अच्छे के लिए होता है"

Everything is in order.

यह सूत्र हमेशा याद रखने जैसा है।

❖ क्रोध प्रेम का नाश करता है, मित्रता खत्म करता है।

❖ क्रोध शरीर - मन - आत्मा तीनों का नुकसान करता है।

शरीर का ब्लडप्रेशर बढाता है,

मन को संक्लिष्ट बनाता है,

आत्मा को कर्म का बंधन कराता है।

साथ ही दूसरे को भी नुकसान पहुँचाता है।

❖ क्रोध करने के बाद ज्यादातर नुकसान ही होता है। क्रोध करने के पूर्व विचार करो कि क्रोध करने से काम बिगड़ेगा या सुधरेगा?

❖ संवत्सरी के पूर्व जो क्षमापना न करे, उसे संघ से बाहर निकाल देना चाहिए ऐसा भद्रबाहुस्वामी म. सा. ने बारसासूत्र में कहा है।

❖ जीवन के अंतकाल तक यदि किसी व्यक्ति के प्रति मन में दुर्भाव रह गया हो, तो वह वैर बनकर भवांतर में आएगा।

❖ 'उचित कारण होने से मैंने क्रोध किया' ऐसा विचार करने वाले को अग्निशर्मा का दृष्टांत देख लेना चाहिए। क्रोध करने के लिए अतिशय

उचित कारण उसके पास था। (३-३ बार राजा की भूल के कारण मासक्षमण का पारणा नहीं हो सका, और ९० उपवास हो गए....) तो भी उसने किये हुए क्रोध के कारण उसका अनंत संसार बढ गया।

❖ सामने वाले की भूल चाहे कितनी भी बड़ी क्यों ना हो, क्रोध सबसे बड़ी भूल है। सामने वाले की भूल की सजा उसे जब मिलेगी तब, पर क्रोध की सजा हमें मिलेगी ही, यह शत प्रतिशत निश्चित है।



सम्यक्त्व के तीन लिंग

❖ सम्यक्त्व के तीन लिंग है - शुश्रूषा, संयम का राग और देव गुरू की भक्ति.....।

(१) शुश्रूषा - धर्म - जिनवाणी सुनने की इच्छा ।

शास्त्रकारों ने दो प्रकार की शुश्रूषा बताई है ।

a) **सुप्तनृपकथावत्** - राजा को सोना हो, नींद नहीं आ रही हो, तब नींद लाने के लिए कथा सुनाई जाती है, तब इस कथा में क्या कहा जा रहा है, उस तरफ उनका ध्यान लगभग नहीं जैसा होता है, कुछ भी याद रखने की मेहनत ही नहीं होती है। आपकी धर्म श्रवण की इच्छा ऐसी तो नहीं है ना ? ऐसी इच्छा जिसे होती है उसे बोध ही नहीं होता बल्कि कोई लाभ भी नहीं होता है, और इसलिए ऐसे श्रोता को उपदेश देने का हरिभद्रसूरि महाराज साहेब ने षोडशक प्रकरण में मना किया है ।

b) **किन्नरगेयश्रवणवत्** - यह बात हमने पहले कर ली है ।

❖ जिनवाणी का महत्त्व कितना है ?

तीर्थंकर जब देशना देते हैं, तब जिन्हें कुछ भी जानना बाकी नहीं रहता है, संपूर्ण ज्ञान हुआ है, ऐसे केवली भगवंत और सर्व श्रुतज्ञान के धारक गणधर भगवंत भी देशना में जाते हैं। वे ''देशना जब हो रही है तब सभी को जाना चाहिए'' ऐसे औचित्य के पालन के लिए ही जाते हैं, क्योंकि देशना से उन्हें दूसरा कोई लाभ होना सम्भव नहीं हैं ।

❖ उपदेशमाला में धर्मदासगणिजी म. सा. ने कहा है कि, गौतम स्वामी भगवान को सभी जानकारी होने पर भी, प्रभु की वाणी को वह विस्मित चित्त से सुनते थे। मैं व्याख्यान में कभी ऐसी बात शुरू करुँ, जिसकी आपको जानकारी हो, तो आप क्या करेंगे ? आज का व्याख्यान कल जो कहा था, वही करने वाला हूँ, Repeat करने वाला हूँ, ऐसी घोषणा करूँ, तो कितने लोग सुनने आएँगे ?

शास्त्रकार कहते हैं कि जिनपूजा और जिनवाणी दोनों की तुलना करनी हो, तो जिनवाणी प्रधान है। ऐसा जिनवाणी का महत्व है, तो व्याख्यान के समय ही मंदिर में स्नात्र / पूजा / पूजन / महोत्सव इत्यादि रखना, क्या उचित है ? सच्चा श्रावक, दूसरे को जिनवाणी सुनने में अंतराय हो, ऐसा कोई कार्य करता ही नहीं। जब व्याख्यान का समय हो तब मंदिर में ही नहीं, दूसरी जगह भी ऐसा कोई प्रसंग नहीं रखता है, जिससे लोग व्याख्यान में न जा सकें। कई बार व्याख्यान के समय पर मंदिर में माईक में पूजन चलता होता है। कितने ही लोग व्याख्यान के समय ही उठना-बैठना रखते हैं। उन्हें यह विचार करना चाहिए कि अनेक लोगों को जिनवाणी सुनने में अंतराय करने का क्या फल मिलेगा ? इसी तरह स्वयं के गाँव में प्रभावक प्रवचनकार महात्मा पधारे हों, सैकड़ों लोग उनके व्याख्यान सुनते हों, और धर्म प्राप्त करते हों, तब उसी समय सामूहिक यात्रा - प्रवास का आयोजन कोई करे और उसके कारण अनेक लोग प्रवचन छोड़ दे, यह भी कितना उचित है ? यह विचारणीय है।

❖ प्रशमरति प्रकरण में उमास्वातिजी म. सा. बताते हैं कि जिनवचन तो राग-द्वेषरूपी जहर को उतारने वाले मंत्र के समान है, इसलिए इसे बारबार कहना / सुनना चाहिए। आपका सौभाग्य है कि आज के समय में भी आपकी समझ में आ जाए, ऐसी सरल भाषा में लिखी हुई हजारों धार्मिक पुस्तकें उपलब्ध हैं, पर करूणता यह है कि आपको पढ़ने की अभिरुचि ही नहीं है। अखबार पढ़ने के लिए, फालतू चर्चा करने के लिए जितना चाहें, उतना समय मिल जाता है, पर आत्मकल्याणकर जिनवचन सुनने / पढ़ने के लिए आपके पास समय ही नहीं है।

(२) संयमधर्म का अनुराग, यह सम्यक्त्व का दूसरा लिंग है।

❖ सम्यक्त्वी, संयम नहीं ले सके, तो भी इसके प्रति उसके हृदय में पक्षपात, प्रचंड अनुराग और अभिलाषा होती है।

❖ कोई ब्राह्मण लंबा-घना जंगल पार करके आया हो, जोर से भूख लगी हो और उसके मनपसंद लड्डु या घेबर का भोजन मिले, तो उसे खाने की जैसी इच्छा होती है वैसी ही इच्छा समकिती को संयम लेने की होती है ।

❖ रन-वे पर दौड़ता हुआ विमान, उड़ने की गति पकड़ने के लिए ही रन-वे पर दौड़ता है, हमेशा वह रन-वे पर नहीं दौड़ता । इसी तरह संसार में रहनेवाला समकिती, जब तक उसके अन्दर संयम लेने की शक्ति पैदा हो, तब तक ही संसार में रहता है, हमेशा संसार में रहने की इच्छा उसे कभी नहीं होती । संयम की शक्ति पैदा हो, उसकी वह राह देखता है । सुंदरी को भरत-चक्रवर्ती ने दीक्षा लेने की आज्ञा नहीं दी, तो ६०,००० वर्ष तक आयंबिल किए । थोड़े समय पूर्व ही एक मुनिवर ने दीक्षा की आज्ञा लेने कि लिए १९ वर्ष तक छः विगई के त्याग के साथ वर्षीतप किया।

❖ समकिती यदि स्वयं की शक्ति न होने के कारण संयम नहीं ले सके, तो जो लेता हो, उसकी भरपूर अनुमोदना करता है, उससे अत्यंत आनंद पाता है और दूसरों को लेने के लिए प्रोत्साहित करता है ।

शालिभद्र की दीक्षा के वरघोडे में श्रेणिक महाराजा, शालिभद्र के मस्तक पर छत्र लेकर चले थे ।

कृष्ण वासुदेव ने, अपनी लगभग सभी लड़कियों को संयम के मार्ग पर भेजा था ।

❖ संयम की इच्छा होना दुर्लभ है ।

द्वारिका नगरी को द्वैपायनने जलाई, तब ५६ करोड यादवों की द्वारिका नगरी से मात्र १ आत्मा ने ही संयम लिया, बाकी सभी जलकर मरने को तैयार हो गए, पर दीक्षा नहीं ली !

❖ आपको आज तक कभी दीक्षा लेने की इच्छा हुई है सही ?

दीक्षा लेने की इच्छा क्यों नहीं होती ?

सभा : संयम पालना बहुत कठिन है ।

बात सच है, पर संसार में भी कष्ट कहाँ कम है ? सारा संसार दुःख संक्लेश और पाप से भरपूर है।

आप एक-दूसरे से मिलते हैं तो पूछते हैं - कैसे हो ? और जवाब देते हैं-मजे में हूँ... आनंद-मंगल है... इत्यादि । पर यह सब नाटक है, थप्पड़ मारकर गाल लाल रख रहे हो । हमारे पास तो जो भी आते हैं, सब रोते ही रहते हैं । हर किसी को कोई न कोई दुःख रहता है । किसी को टेंशन है, किसी को बिमारी है, किसी के धंधे में बरकत नहीं है, किसी का बच्चा बिगड़ा हुआ है, किसी की पत्नी कर्कशा है। आज तक हमें कोई ऐसा नहीं मिला, जिसे हर बात का सुख हो । इसलिए संसार में दुःख तो हैं ही, पर इन सभी दुःखों से आप अभ्यस्त हो गये हैं, इसलिए ये आपको दिखाई नहीं देते हैं, और संयम में कष्ट दिखाई देता है । वस्तविकता यह है कि संयम में भी जिसने मानसिक रूप से सारे कष्टों को (लोच, विहार, गोचरी इत्यादि को) स्वीकार कर लिया है उसे कोई दुःख नहीं होता है ।

आप भी विचार करें तो आपको पता चलेगा कि जिन कष्टों के लिए आप मानसिक रूप से तैयार हैं, वे जब आते हैं तो आपको कोई दुःख नहीं होता । बल्कि संयम में परम सुख है - लगभग संक्लेश-चिंतामुक्त जीवन होने से मानसिक दुःख जरा भी नहीं होता है । इसका कारण निःस्पृहता है, किसी की अपेक्षा नहीं है, यह बात हमने पहले की है। ज्ञानसार में महोपाध्याय यशोविजयजी म. सा. लिखते हैं - साधु धरती पर सोते हैं, मांगकर खाते हैं, जीर्ण वस्त्र पहनते हैं, जंगल में रहते हैं, फिर भी चक्रवर्ती से भी ज्यादा सुखी हैं, क्योंकि वे निःस्पृह हैं । उमास्वातिजी महाराज साहब ने प्रशमरति में बताया है कि सर्व देवों के सुखों को इकट्ठा करो और उसे अरबों से गुणा करो, तो भी एक साधु के सुख का हजारवाँ भाग भी नहीं होगा । यह मात्र शास्त्रों की ही बात

नहीं है, हमारा अनुभव भी है । बिल गेट्स और मुकेश अंबानी भी हमारे सुख के सामने पानी भरते हैं ।

पर आपको संयम में 'सुख' है, यह बात दिमाग में बैठती ही नहीं है। जिन गाँव के लोगो ने कभी घेवर खाया ही न हो, उन्हें घेवर की मिठास गुड़ से ज्यादा होती है, यह बात समझ में ही नही आती, वैसी ही आपकी हालत है । भोग के सुख (?) का अनुभव आपने किया है, पर त्याग के सुख का अनुभव आपने कभी किया ही नहीं है, इसलिये आपको इस पर विश्वास नहीं है ।

❖ यदि आप संयमजीवन को कष्टों से भरपूर मानते हैं, तो भी मुनिसुंदरसूरीश्वरजी म. सा. ने अध्यात्म कल्पद्रुम में कह दिया है– "आपके पास दो विकल्प हैं, या तो इस भव में संयम के कष्ट सहन कर लो, या आने वाले भव में नरक – तिर्यंच गति के दुःखों को सहन करने के लिए तैयार हो जाओ !" और यह दुःख, संयम के कष्ट से लाखों गुणा है, यह तो आप भी जानते ही हैं।

❖ संसार बसाने के बाद ज्यादातर लोग पश्चात्ताप करते हैं । दीक्षा लेने के बाद पश्चात्ताप हो, ऐसे साधु तो कोई ही होंगे । इसके विपरीत जिन्होंने दीक्षा ली हो, वे अपने माता–पिता को भी दीक्षा लेने की प्रेरणा करते हैं । यही बताता है कि यहाँ आने में ही वास्तविक आनंद है । संयम लिए बिना संसार से छुटकारा होनेवाला नहीं है, यह निश्चित ही है, तो फिर इस भव में ही संयम क्यों नहीं लेना चाहते ? अगर इच्छा करोगे, तो सारी अनुकुलताएँ हो सकती हैं, इच्छा ही नहीं करोगे, तो कभी अनुकूलता आनेवाली नहीं हैं ।

सभा : हम ऐसा विचार करते हैं कि आनेवाले भव में महाविदेह क्षेत्र में जाकर दीक्षा लेंगे ।

पहली बात तो यह है कि आने वाले भव में मनुष्य भव मिलेगा, आर्यदेश –कुल मिलेगा, महाविदेह क्षेत्र मिलेगा, जैनशासन – सदगुरू

मिलेंगे, इत्यादि सभी सामग्रियाँ मिलेंगी इसकी कोई गारंटी है ? हमने पहले देखा है कि ये सारी वस्तुएँ अत्यंत दुर्लभ हैं और अनंत पुण्यराशि इकट्ठी हों, तभी मिलती हैं ।

अपने वर्तमान जीवन के विषय में सोचेंगे तो ख्याल आएगा कि आपके पास आने वाले भव में यह सबकुछ मिले ऐसा पुण्य आपने उपार्जित किया है या नहीं ?

दूसरी बात, मान लें कि आपको सबकुछ मिला, फिर भी इस भव की तरह ऐसा ही विचार करेंगे कि "आनेवाले भव में लूँगा" ऐसा नहीं होगा, इसका क्या सबूत ? यदि इस भव में सभी सामग्रियाँ मिलने पर भी, आप यह विचार करते हैं, तो आने वाले भव में भी यही सोचेंगे। शत्रुंजय से रामपोल तक लगभग ३३०० सीडियाँ हैं, उसके बाद १५०-२०० सीडियाँ होंगी । कोई रामपोल तक पहुँचे, फिर बहुत थक जाए, और कहे कि "अब मैं आगे जा ही नहीं सकता, यहाँ से ही उतर जाऊँगा, कल ऊपर चढूँगा" तो आप क्या कहेंगे ? यही ना, की "अरे भाई ! अब तो १५०-२०० ही बाकी रहे हैं, कल तो ३५०० फिर से चढ़ने पडेंगे, फिर कल इतना चढ सकोगे के नहीं, इसकी क्या गारंटी है ?" इसी तरह हमारा भी यही कहना है कि इस भव में आप सब कुछ पा चुके हो, तब अब एक ही छलाँग लगाना बाकी है, इसे यदि चुके तो आने वाले भव में तो फिर एक से ही शुरूआत करनी पड़ेगी, तो फिर इसी भव में छलाँग क्यों नहीं लगाते ?

❖ उपदेशमाला में धर्मदासगणि म. सा. लिखते हैं कि एक दिन भी यदि संयम का पालन करें, तो वह नियम से देवलोक में ही जाता है । पुंडरिक राजा मात्र १ दिन के संयम के प्रभाव से सर्वार्थसिद्ध विमान में गए थे ।

❖ कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म. सा ने वीतराग स्तोत्र में लिखा है कि कलिकाल तो अच्छा है, क्योंकि इसमें बहुत कम समय में ही

आराधना का फल प्राप्त किया जा सकता है, जो सतयुग में (चौथे आरे में) बहुत लम्बे समय के बाद मिलता है।

चौथे आरे में क्रोड पूर्व का आयुष्य होता है, इतना संयम पालने से जो फल मिलता है, वह पाँचवें आरे में २५-५० वर्ष संयम पालने से मिल सकता है ।

३) देव - गुरूकी भक्ति - सम्यक्त्व का तीसरा लिंग है ।

❖ आप जिस गाँव / शहर में रहते हो, वहाँ के सभी जिनमंदिरों के साल में १ बार तो दर्शन करने जाते हो ना ?

❖ जिस मंदिर में आप हर रोज पूजा / भक्ति करते हो, उस मंदिर में विराजमान सभी प्रतिमाओं की साल में १ बार तो नवांगी पूजा करते हो ना ?

❖ वर्तमान में केसर पूजा का प्रचलन बहुत है। परन्तु प्रभु की संपूर्ण पूजा - अष्टप्रकारी पूजा है, कम से कम सप्ताह में १ बार (छुट्टी के दिन) तो अष्टप्रकारी पूजा करते हो ? तीर्थयात्रा करने गए हो, तब वहाँ अष्टप्रकारी पूजा करते हो ? साल में १ बार तो तीर्थयात्रा करते हो ना ? यदि इस भव में इतने देरासर - प्रभुप्रतिमा मिली हैं, उन्हे दर्शन-पूजन का उल्लास यदि होता न हो, तो यदि आप देवलोक में गए, तो वहाँ शाश्वत तीर्थो की यात्रा - प्रभुभक्ति करने का उल्लास कैसे होगा ? रास्ते में चलते हुए, गाड़ी / स्कूटर आदि वाहनो में जाते हुए, रास्ते में जिनालय की ध्वजा / शिखर दिखे तो सिर झुकाकर नमो जिणाणं तो कहते हो ना ?

❖ किसी काम में न आए ऐसे पिक्चर के गीत और ऐडवर्टाइज़मेन्ट के गीत आप गुनगुनाते रहते हैं, पर प्रभु की भक्ति करने की स्तुतियाँ-स्तवन कितने लोग गुनगुननाते हैं ? कितने महीने तक रोज एक नई स्तुति, स्तवन बोल सकेंगे ? चौबीसों भगवान का कम से कम एक स्तवन आता है ? प्रभुभक्ति में भाव नहीं आते हैं, ऐसी शिकायत आप

सभी करते हैं, पर इसमें भाव उत्पन्न करने के लिए जरूरी सामग्री आपके पास होने पर भी यदि आपको इसका उपयोग ही नहीं करना है, तो भाव कैसे आएँगे ?

❖ परमात्मा की भक्ति से प्रेरित होकर प्रतिष्ठा - स्वप्न इत्यादि में लाखों करोड़ों की बोलियाँ बोली जाती हैं, यह बहुत आनंद की बात है । पर महत्त्व की बात यह है कि बोली बोलने के बाद रकम जल्द से जल्द भर दी जानी चाहिए । रकम भरने में जितनी देरी होती है, उतनी ही देवद्रव्य की संपत्ति अपने घर में रखने का दोष लगता है। और देवद्रव्य का भक्षण यह महादोष है । संबोधसित्तरी ग्रंथ में शास्त्रकार ने चार महादोष कहे हैं -

(१) उन्मार्ग की प्ररूपणा

(२) साधु की हत्या

(३) देवद्रव्य का भक्षण

(४) साध्वी का शीलभंग

❖ उपदेश प्रासाद ग्रंथ में देवद्रव्य का भक्षण करनेवाले को जो दुःख भोगना पड़ता है, उसका वर्णन करते हुए दृष्टांत दिया है ।

सागर श्रेष्ठि ने साडे बारह रूपए देवद्रव्य का भक्षण परोक्ष रूप से किया, इसके कारण अंडगोलिक मनुष्य, तीसरी नरक, मछली, ४थी नरक, ७वी नरक में २ बार गया, फिर १-१ हजार भव, कुत्ते के, सूअर के, बकरे के, भेड. के हिरण के, खरगोश के, साबर के, सियार के, बिल्ली के, चुहे के, छिपकली के, साँप के किए । फिर हजारों भव विकलेन्द्रिय में किए, लाखों भव संसार में परिभ्रमण किये। फिर जब मनुष्यभव में आए तब गर्भ में ही थे तो उनके पिता की संपत्ति लुट गई, जन्म होते ही पिता की मृत्यु हो गई, जहाँ भी जाते वहाँ आश्रयदाता को नुकसान होता, ऐसा ९९९ बार हुआ ।

यह दृष्टांत सुनकर / पढ़कर श्रावक को इतना तो निर्णय कर ही लेना चाहिए कि जिंदगी में कभी भी देवद्रव्य के भक्षण का पाप नहीं करुँगा।

❖ चढ़ावा बोलने के बाद रकम भरने में देर करते हो, तो यह संभव है कि आपका आयुष्य पूरा हो जाए, जिंदगी का कोई भरोसा नहीं है। सं. २०६४ में महेसाणा उपनगर संघ में चातुर्मास के दरम्यान पर्युषण पर्व के तीसरे दिन प्रवचन में कल्पसूत्र घर ले जाने का चढ़ावा बोला जा रहा था। संघ के ट्रस्टी, उदारदिल, भाविक सुश्रावक श्री अरणिक भाई ने बड़ी रकम में चढ़ावा लिया, लेने के बाद वासक्षेप के लिए मेरे पास आए, जैसे ही मैंने वासक्षेप किया कि दूसरे मिनट में वह मेरे पैर को पकड़कर गिर गए, severe हार्ट अटेक - १०-१५ मिनट में तो हंस पिंजरा छोड़कर चला गया। सभी स्तब्ध हो गए। उनके सुपुत्रादि परिवार ने सारी रकम भर दी, परंतु यह ध्यान में रखना चाहिए कि रकम भरे बिना यदि हम चले गए, और किसी ने नहीं भरी, तो हमारे मस्तक पर यह कर्ज रह जाता है और इसका फल पूर्व में बताए गए दृष्टांत जैसा ही भोगना पड़ता है।

❖ दूसरी बात यह है कि संपत्ति का भी कोई भरोसा नहीं होता है। कभी भी कोई बड़ा घाटा लगे और सारी संपत्ति चली जाती है, ऐसा भी हो सकता है।

❖ मुंबई के १ सुश्रावक बहुत उदार थे, हर फंड में पहले नाम लिखाते, चढ़ावे भी बहुत अच्छे बोलते। २१००० के इन्डेक्स से शेयर बाजार टूटा, तब 'ब्लेक मन्डे' के दिन १ घंटे में उन्हें १ करोड से ज्यादा नुकसान हुआ! और दिवालिया हो गए। कच्छ में भूकंप आया, तब जो श्रावक करोड़पति थे, वे चंद मिनटों में ही रोडपति हो गए।

इसलिए चढ़ावा बोलते समय जो संपत्ति है, वह कायम रहने ही वाली है, ऐसा कभी नहीं सोचना चाहिए - चढ़ावे की रकम तुरंत ही भर देनी चाहिए।

❖ अहमदाबाद में एक मंदिर की प्रतिष्ठा के प्रसंग पर एक श्रावक ने एक करोड़ रूपये का चढ़ावा लिया, और एक घंटे में ही पैसे भर दिये । कई श्रावक चढ़ावे की रकम भरने के बाद ही लाभ लेते हैं । सभी इस विषय में जाग्रत बनें, यह बहुत जरूरी है ।

❖ जिस तरह चढ़ावे बोलने वाले को रकम समय पर भरनी है, उसी तरह संघ के व्यवस्थापकों / ट्रस्टियों को समय पर उपयोग भी कर देना चाहिए । जिनशासन में ७ क्षेत्रों की व्यवस्था है, उसकी व्यवस्था योग्य तरीके से ही की जा सकती है, किसी भी खाते की रकम का किसी भी कार्य के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता है । जरूरत नहीं होने पर भी बड़ी रकम को रखना, बैंक में F.D. करके रखना, यह भी योग्य नहीं हैं । संपत्ति संघ की है, और संघ को जरूरत हो तो देनी ही चाहिए । दुर्भाग्य की बात यह है कि बहुत कम व्यवस्थापकों को यह ज्ञान होता है, और इससे भी कम व्यवस्थापक इसका ध्यान रखते हैं ।

❖ जिस तरह देवद्रव्य का भक्षण करने वाले को महान दोष लगता है, उसी तरह देवद्रव्य की दुर्व्यवस्था करने वाले, सुव्यवस्था न करने वाले व्यवस्थापकों को भी महान दोष लगता है ।

❖ सम्यक्त्वी जीव देव - गुरू की भक्ति कैसी करते हैं ? तो शास्त्रकार कहते हैं कि किसी को कोई विद्या सिद्ध करनी हो, तो वह उसकी साधना करने में थोड़ी भी आलस नहीं करता है, इसी तरह भक्ति में सम्यक्त्वी जीव आलस नहीं करता है ।

❖ मात्र परमात्मा की भक्ति करे, और गुरू की भक्ति नहीं करे, तो यह भी योग्य नहीं है; और गुरू को इतना महत्त्व दे कि परमात्मा गौण हो जाए, तो यह भी ठीक नहीं है ।

जिनशासन में कितने ही पंथ ऐसे भी हुए हैं, जिसमें गुरू को प्रधान माना गया है और अरिहंत को गौण माना गया है । गुरू के वचन को ही मानना, गुरू का मंदिर बनवाना, गुरू की ही पूजा करनी, गुरू की

ही आरती उतारनी.... यह सब प्रधान रूप से करने लगे हैं, जो उचित नहीं है । सभी गुरू, छद्मस्थ हैं, सरागी हैं । अरिहंत की तुलना में आ सके ऐसा कोई नहीं है, यह समझ लेना चाहिए ।

इसी तरह कोई भी गुरू को अपने मस्तक पर न रखे, यह भी ठीक नहीं है । दवा की दुकान में हजारों दवाईयाँ होती हैं, पर उनमें से आपके रोग में काम आनेवाली दवाई जो डॉक्टर देते हैं, वही आप लेते हैं, जो अच्छी लगे वह दवाई आप नहीं लेते हैं । अगर आप लेंगे तो भी रोग ठीक नहीं होगा । इसी तरह प्रभुवचन तो लाखों शास्त्र ग्रंथों में है, इनमें से हमारे में जो दोष है, उसके अनुसार गीतार्थ गुरूभगवंत, उन दोषों को सुधारने के लिए उपयोगी योग्य मार्ग बताते हैं, इस मार्ग पर चलने से ही आपके दोषों का नाश होता है । हमें जो अच्छा लगे उस मार्ग पर चलने से नहीं होता है ।

जो साधु भी गीतार्थ गुरू के परतंत्र न रहे, स्वयं की बुद्धि के अनुसार व्यवहार करे, तो जैसे सागर में से बाहर निकली हुई मछली की तरह अपना जीवन गँवा देती है, उसी तरह साधु अपना आत्मकल्याण गँवा देता है ऐसा शास्त्रकार कहते हैं । यदि सभी पापों को त्याग कर चुके साधु को भी गीतार्थ गुरू के परतंत्र रहना होता है, तो दूसरे सभी को तो रहना ही चाहिए, इसमें कोई प्रश्न ही नहीं रहता ।



सम्यक्त्व के ५ दोष

❖ सम्यकत्व के ५ दोष शास्त्रकारों ने बताए हैं ।

(१) शंका - जिनवचन में शंका करना, यह पहला दोष है ।

(२) कांक्षा - जैन धर्म के सिवाय अन्य धर्म के देव की भक्ति इत्यादि करना । कई बार जैन श्रावक भी अन्य देवों के मंदिर में जाते हुए दिखाई देते हैं । जैसा कि पहले बताया गया है - अरिहंत देव की तुलना अन्य देवों के साथ नहीं की जा सकती है । सभी को समान मानना यह बहुत बड़ी अज्ञानता है ।

प्रश्न - पर राम, हनुमान इत्यादि मोक्ष में गए हैं, कृष्ण - रावण इत्यादि तीर्थंकर बनने वाले हैं, तो उनको नमस्कारादि क्यों नहीं किया जा सकता है ?

उत्तर - राम-हनुमान की बात तो अलग है, पर स्वयं तीर्थंकर की प्रतिमा भी जो अन्य धर्मावलम्बियों ने अपने कब्जे में रखी हो, उसे नमस्कार करने का शास्त्रकारों ने मना किया है, तो फिर अन्य धर्मावलम्बियों के मंदिर में विराजमान राम-हनुमान आदि को नमस्कार कैसे किया जा सकता है ?

प्रश्न - पर क्यों नहीं किया जा सकता ?

उत्तर - क्योंकि उससे व्यवहार अशुद्ध होता है । यदि आप उसे सिद्ध मानकर भी नमस्कार करो, तो आपको देखकर दूसरे लोग भी यह मानने लगते हैं कि "इस मंदिर में जा सकते हैं - यहा वंदन-पूजन वगैरह किया जा सकता है" । और उसे तो सही तत्त्व की जानकारी ही नहीं होती है इसीलिए उसके मिथ्यात्व की वृद्धि होती है, यह हकीकत है । कई बार जो महाराज साहब करते हैं, उसे देखकर श्रावक भी वही करने लग जाते हैं, और कहते हैं - "ऐसा तो महाराज साहब भी करते हैं, इसलिए हम भी कर सकते हैं ।" इसी तरह आप यदि दूसरे मंदिरों

में जाओ, तो आपको देखकर अन्य लोग भी जाने लग जाते हैं ।
(यहाँ यह बात ध्यान रखने योग्य है कि महाराज साहब के आचार अलग हैं और श्रावक के आचार अलग हैं ।

साधु भगवंत जो भी करते हैं वह सबकुछ श्रावकों को करने की छूट नहीं है । ऐसी कई चीजें होती हैं, जिसकी शास्त्रकारोंने / पूर्वाचार्यों ने साधु भगवंत को छूट दी है, परन्तु श्रावकों को नहीं दी है, जैसे कि साधु भगवंत निर्दोष गोचरी का उपयोग करते हैं, इसलिये आयंबिलमें भी आटा गूँथते समय थोडा सा तेल डाली हुई सूखी रोटी खपती है, परन्तु श्रावक को नहीं खपती है ।

इसलिए ''महाराज साहब को खपता है, तो हमें भी खपता है'' ऐसा नियम सभी जगह लग नहीं सकता, इस विषय का विशेष ज्ञान गीतार्थ गुरू भगवंतों से लेना चाहिए)

हाँ, यदि जैन देरासर में सिद्ध के रूप में राम-हनुमान इत्यादि की मूर्ति हो, तो नमस्कार करने में कोई आपत्ति नहीं है ।

प्रश्न - पर ऐसा कहा जाता है कि अरिहंत के पास मोक्ष के सिवाय और कुछ नहीं मांगा जाता है, अगर मांगे तो बहुत पाप लगता है, संसार बढता है इत्यादि । और हमको संसार में कई आपत्तियाँ आती हैं, तो फिर उसके निवारण के लिए हमें दूसरे देवों के पास ही जाना पड़ेगा ना ?

उत्तर -मोक्ष के अलावा दूसरा कुछ इच्छा करने जैसा है ही नहीं, यह तो श्रेष्ठ बात है ही, पर सांसारिक जीवको संसार की अनेक प्रकार की इच्छाएँ होती ही रहती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं हैं । इसलिए यह अच्छी तरह से समझ लो की यदि कुछ भी मांगना हो तो अरिहंत के सिवाय किसी के पास भी मांगने जैसा नहीं है । महोपाध्याय यशोविजयजी महाराज साहब ने संभवनाथ भगवान के स्तवन में कहा है - ''देशो तो तुम ही भला, बीजा तो नवि जाचुं रे ।''

अजित-शांति की अंतिम गाथा में शास्त्रकार बताते हैं, "यदि आपको मोक्ष की इच्छा हो अथवा इस लोक में सुविस्तृत कीर्ति की इच्छा हो, तो जिनवचन में आदर करो" । इसलिए माँगना हो, तो भी अरिहंत के पास ही माँगना चाहिए ।

प्रश्न - परन्तु हमने तो यह सुना है कि "संसार के सुखों के लिए कभी भी धर्म नहीं करना चाहिए, प्रभु के पास सांसारिक वस्तुएँ कभी भी नहीं मांगनी चाहिए, उससे भयंकर पाप लगता है" और आप तो उल्टा ही कह रहे हैं ।

उत्तर - धर्म, मोक्ष के लिए करो, यह श्रेष्ठ है, - यह हमने कहा ही है। पर सांसारिक सुखों की इच्छा आपको रहने ही वाली है, यह शास्त्रकार भी जानते हैं । और इसके लिए क्या करना ? तो धर्म ही करना है, अधर्म कभी भी नहीं करना चाहिए ।

इसी तरह अरिहंत के पास मोक्ष ही मांगो तो वह अच्छा है, पर ऊपर कहे अनुसार सुखों की इच्छा हो, तो भी अरिहंत को छोड़कर दूसरे के पास तो जाना ही नहीं चाहिए । इसमें तो मिथ्यात्वादि बहुत बड़े दोष हैं ।

शास्त्रों में ऐसी बातें आती हैं कि धर्म सुख के लिए करो तो संसार बढ़ता है इत्यादि- पर यह बात हर जगह लागू नहीं होती है । जिसे सांसारिक सुखों के प्रति तीव्र आसक्ति होती है, मोक्ष अच्छा ही न लगता हो, ऐसे जीवों की यह बातें हैं ।

सभी के लिए यह बात नहीं है । अवंतिसुकुमाल ने देवलोक में जाने के लिए संयम लिया । चक्रवर्ती ६ खंड जीतने के लिए अठ्ठम करते हैं । तो भी इस धर्म से उनका संसार बढ़ता नहीं है ।

जैसे बादाम का हलवा शक्ति पाने के लिए खाया जाता है, पेट भरने के लिए नहीं, फिर भी यदि कोई पेट भरने के लिए बादाम का हलवा खाए, तो इससे शक्ति ही मिलती है, अशक्ति नहीं आती है । हाँ, यदि

किसी की पाचनशक्ति कमजोर हो, और इसे पचा ही न सके और डायरिया हो जाए, तो बात अलग है । इसी तरह यदि सुख की इच्छा से धर्म करे, तो भी योग्य जीव को तो इससे लाभ ही होता है ।

हाँ, अभव्य - अचरमावर्ती जैसे भारे कर्मी जीवों को इससे भी संसार बढ़ता है, परन्तु यह उनकी अपात्रता के कारण बढ़ता है - संसार के प्रति तीव्र आसक्ति के कारण बढ़ता है, धर्म के कारण नहीं । यह बात बहुत गहराई से समझनी पड़ेगी । इसे गीतार्थ गुरू भगवंतों के से समझना चाहिए ।

मेरी बात तो यही है कि, अरिहंत के सिवा दूसरे किसी देव के पास नहीं जाना चाहिए ।

प्रश्न - पर अरिहंत तो वीतराग हैं, मोक्ष में गए हैं, वे क्या देंगे ? वे तो कुछ करते ही नहीं हैं ।

उत्तर - पूर्व में हमने कहा ही है कि अरिहंत की भक्ति से सर्व कार्यों की सिद्धि हो जाती है, चाहे अरिहंत कुछ भी न करे, तो भी उनकी भक्ति से सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं, और सब कुछ मिल ही जाता है । अरिहंत की भक्ति से कुछ भी नहीं मिलता, ऐसा मानना यह तो मिथ्यात्व है ।

❖ जो सभी देवों को मानते हैं, उनके ऊपर कोई प्रसन्न नहीं होता है और आपत्ति में कोई भी सहायता नहीं करता है । उपदेश प्रासाद में इस विषय पर एक अच्छा दृष्टांत हैं ।

एक मनुष्य, सभी देवों की भक्ति करता था । एक बार उस पर एक बड़ी आपत्ति आ गई, तो वह पहले वाले देव के पास गया, उसने उसे दूसरे के पास भेजा - दूसरे ने तीसरे के पास भेजा, इस तरह किसी ने भी उसका हाथ नहीं पकड़ा । इसका सार यही है कि जो एक ही अरिहंत को पकड़कर रखता है, उसीका उद्धार होता है ।

३) सम्यक्त्व का तीसरा दोष है, विचिकित्सा, मतलब की धर्म के फल

में शंका करना ।

कई लोगों को शंका होती है, "हम इतने वर्षो से पूजा कर रहे हैं, सामायिक- प्रतिक्रमण कर रहे हैं, इसका फल तो हमें कुछ मिलता ही नहीं है, तो फिर इन सभी धर्माराधनाओं का कोई फल है कि नहीं ?" क्रिया का खंडन करनेवाले कोरे निश्चयवादी इस बात को और बढ़ावा देते हैं ।

यहाँ एक बात फिर से कहनी है कि भावयुक्त धर्मक्रिया का फल तो प्रचंड है ही, पर अल्प भाव वाली धर्मक्रिया या भावशून्य धर्मक्रिया भी कभी सर्वथा निष्फल नहीं जाती है, इसका भी फल तो मिलता ही है ।

❖ धर्म का फल क्या ? तो संक्षिप्त में

(१) पुण्यबंध और इसके द्वारा सुख सामग्री

(२) कर्म का नाश

(३) दोषों का नाश

ये तीनो फल सीधे तो दिखाई नहीं देते हैं । धर्म करने से पुण्य बंधा हो, तो भी पता किस तरह चलेगा ? धर्म के प्रभाव से ही यदि कोई संपत्ति मिली हो, तो कैसे पता चलेगा ? हमें तो इतना ही दिखाई देता है कि मेहनत की कमाई हुई, पर इस मेहनत के सफल होने के पीछे, पुण्य काम कर रहा है, जो धर्म से ही बंधा हुआ है वह दिखाई नहीं देता है । और कर्म का नाश, दोषों का नाश भी हमें साक्षात् तो दिखाई ही नहीं देता है ।

समुद्र से एकाध बाल्टी पानी निकालने से समुद्र का पानी कम होता हुआ दिखाई नहीं देता है, परन्तु पानी कम हुआ है, यह वास्तविकता है । इसी तरह अनंत दोष और अनंत कर्म आत्मा के ऊपर लगे हुए हैं, इसमें थोड़े वर्षो की आराधना (वह भी कमजोर) से थोड़े बहुत कर्म / दोष दूर हो जाते हैं, परन्तु पता नहीं चलता है कि इतने कर्म

/ दोष कम हो गए। दूसरी बात यह है कि हमारे जीवन में शायद धर्म है, पर अधर्म तो है ही। यदि धर्मबिंदु जितना है, तो अधर्म सिंधु जितना। यदि धर्म से पुण्यबंध - पाप नाश होता है, तो अधर्म से पुण्य नाश पापबंध भी होता है। इसलिए कुल मिलाकर हम नुकसान में ही आकर खड़े हो जाते हैं, तो फिर धर्म का फल कैसे दिखाई देगा ? इसलिए धर्म का फल नहीं दिखाई देने के कारण, फल है या नहीं ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए।

❖ शास्त्रकारों ने धर्म का प्रचंड फल बताया है।

'सिद्धाणं बुद्धाणं' में शास्त्रकार बताते हैं कि परमात्मा को किया गया एक नमस्कार जीवको संसार से तार देता है, फिर भी हम तो जहाँ के तहाँ ही हैं, यह हमारा अनुभव है। ऐसा क्यों होता है ? इसके मुख्य ३ कारण हैं।

(१) अविधि

(२) अनादर

(३) अविवेक

❖ धर्म के संपूर्ण फल को प्राप्त करने के लिए संपूर्ण विधि का पालन भी होना चाहिए। संपूर्ण आदर बहुमान भी चाहिए, विवेक भी चाहिए। परन्तु हम सभी इसमें टूट जाते हैं।

❖ एक खमासणा, मुहपत्ति का पडिलेहण या वांदणा विधिपूर्वक कितने को करना आता है ? यह प्रश्न है।

जिनपूजा की विधि में ५ अभिगम - दस त्रिक इत्यादि का पालन करना चाहिए, यह कितने को पता है ? और कौन इसका पालन करता है ? विधि में गड़बड़ी करना और फिर फल न मिलने की शिकायत करना, यह कैसे चल सकता है ? जो हल्के देव हैं, वे विधि - अविधि कुछ नहीं देखते हैं, स्वयं का प्रभाव बढ़ाने के लिए, सामान्य भक्ति करने वाले पर भी खुश हो जाते हैं और अपना प्रभाव दिखाते हैं।

❖ संसार की हर चीज में आप भली भाँति विधि का पालन करते हैं। कम्प्युटर की एकाध 'की' दबाने में यदि भूल हो जाए, तो पूरा परिणाम बदल जाता है, यह आपको पता है। योगासन करने में एक भी वस्तु ज्यादा - कम करने से आरोग्य की प्राप्ति नहीं होती है।

दवाई में भी ऐसा ही है - त्रिफला भोजन से पहले लो, तो अलग असर करती है, भोजन के बाद लो, तो अलग असर करती है। रोटी के साथ सब्जी ही खाते हो, खाखरे के साथ चाय ही पीते हो, इसमें कभी गड़बड़ी नहीं करते हो। और धर्म के क्षेत्र में विधि के प्रति बिल्कुल लापरवाह रहते हो, तो यह कैसे चलेगा ? कई बार तो ऐसा लगता है कि जैसा-तैसा धर्म भी आप करते हो, इसके लिए आपको धन्यवाद देना चाहिए। पर जब आप पूछते हो कि धर्म का फल क्यों नहीं मिलता है, तब हमें कहना ही पड़ता है कि इसका बहुत बड़ा कारण अविधि है।

ज्यादातर लोगों को तो विधि का ज्ञान ही नहीं होता है; इतना ही नहीं, ज्ञान पाने का पुरूषार्थ भी नहीं होता, इच्छा भी नहीं होती और कभी कोई विधि की छोटी-छोटी बातें बताएँ, तो समझने की तैयारी भी नहीं होती।

हम व्याख्यान में खमासमण के १७ संडासे, वांदणा के २५ आवश्यक इत्यादि समझाने बैठें, तो इसमें से कितने आएँगे ? इसलिए यदि धर्म का सच्चा फल प्राप्त करना हो, तो विधि बराबर जाननी चाहिए, उसका पालन करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए। जानने का प्रयत्न और पालने का पुरूषार्थ करने के बाद भी यदि कोई अविधि हो जाए, तो वह क्षम्य है, पर जानने का या पालने का पुरूषार्थ ही न हो, तो फल में कमी हो जाती है। इसलिए जो भी आराधना करते हो, फिर चाहे वह नवकारशी हो या पौषध हो, प्रत्येक की विधि जाननी चाहिए और करनी चाहिए।

❖ धर्म के फल को धक्का पहुँचाने वाला दूसरा परिबल है आदर का अभाव। जो भी आराधना करते हो, उस पर आदर कैसा और कितना है ? यह प्रश्न है।

ज्यादातर लोगों की यह शिकायत है कि "साहब हम पूजा करते हैं, सामायिक करते हैं, पर एक में भी मन नहीं लगता है। मन तो सतत् दूसरे विचारों में ही भटकता रहता है" फिर फल कैसा मिलेगा ?

हर आराधना में भाव कैसे उत्पन्न हो, मन कैसे जुड़े, यह बहुत लंबा विषय है, यह भी गुरू भगवंतों के पास से जानकर इसी विषय में पुरुषार्थ करना चाहिए। हाँ, मुझे यह आराधना करनी है, यह भी एक भाव तो है ही और इसलिए इतना तो फल मिलता ही है।

❖ धर्म के फल में महत्त्वपूर्ण तीसरा परिबल है, विवेक।

कोई भी आराधना विवेकपूर्वक की हो तो ही फल देती है। देरासर में सुंदर प्रभुभक्ति करे, पर दूसरों को अंतराय न हो, ऐसा विवेक नहीं रखे तो नहीं चलता है। यह सबकुछ समझ लेना चाहिए।

❖ धर्म का मुख्य फल तो दोषनाश - कर्मनाश - अंत में मोक्ष की प्राप्ति ही है। परन्तु संसार में उत्तम सुख भी धर्म के प्रभाव से मिलता है। शास्त्रकार कहते हैं कि मोक्ष के सुख के सामने संसार के सुखों की कोई कीमत नहीं है। षोडशक में हरिभद्रसूरि म. सा. ने बताया है कि संसार के सुख घास जैसे हैं। कोई भी घास उगाने के लिए खेती नहीं करता है, अनाज उगाने के लिए ही करता है, घास तो अपने आप ही उग जाती है। इसी तरह धर्म तो मोक्ष के लिए ही करना चाहिए, इससे संसार के सुख तो मिल ही जाते हैं। इतना ही नहीं, यदि अनाज अच्छी तरह उगाना हो, तो उगी हुई घास को काटना पड़ता है। इसी तरह धर्म के प्रभाव से यदि मोक्ष का सुख चाहिए, तो घास जैसे मिले हुए संसार के सुखों का त्याग करना पड़ता है।

❖ आपकी धर्म के फल के प्रति श्रद्धा कैसी ?

सभा : है, इसीलिए तो करते हैं ना ?

उत्तर - कैसी है ? यही प्रश्न है ।

मुंबई के एक श्रावक ने हमारे गुरुदेवश्री को एक अच्छी बात बताई। वह अपने छोटे पोते को लेकर देरासर गये, दर्शन करके भंडार में पैसे डालने के लिए दिए और कहा - ''भंडार में डाल दे'' । लड़के ने पूछा - ''दादाजी, भंडार में पैसे क्यों डालना चाहिए ?'' मैं आपको पूछता हूँ - बोलो, क्या जवाब दोगे ?

सभा : पुण्य बंधता है इसलिए ।

उत्तर - 'पुण्य' का मतलब क्या ? यह छोटे बच्चे को कैसे पता चलेगा? वह दूसरा प्रश्न पूछता है, ''दादा, पुण्य बंधने से क्या होता है ।'' श्रावक ने बालक की समझ में आ जाए ऐसी भाषा में जवाब दिया, ''बेटा, भंडार में जितने पैसे डालते है, उसके अनेक गुणा होकर मिलते हैं''। आपको भी ऐसी श्रद्धा है ना सच्ची ?

सभा : हाँ.....।

उत्तर - फिर लड़के ने दूसरा प्रश्न किया - ''दादाजी, यदि जितने डाले, उसके अनेकगुणा मिलते हों, तो फिर इतने ही पैसे क्यों ? पर्स में जितने हैं, सभी डाल देने चाहिए ना ।'' बोलो , अब क्या जवाब दोगे ? वास्तविकता यह है कि आपकी श्रद्धा आधी है, इसलिए पूरे उल्लास से धर्म में जुड़ते नहीं हो ।

अहमदाबाद से दिल्ली जा रहे हो, और रास्ता सही है कि नहीं? ऐसी शंका हो, तो क्या हालत होगी ? न तो गाड़ी रोकोगे, न स्पीड बढ़ाओगे, धीरे-धीरे चलाओगे । और रास्ते में कोई बोर्ड आ रहा है कि नहीं यह देखते जाओगे । बस, आपकी भी धर्म में यही हालत है । न तो स्पीड से आप दौड़ते हो और न खड़े रहते हो ! श्रद्धा आधी होने के कारण आपके अन्दर जितना उल्लास होना चाहिए उतना नहीं है, और इसी कारण आपको पूरा फल नहीं मिलता है, और आपकी श्रद्धा नहीं बढ़ती

है । यह विषचक्र चलता ही रहता है ।

इस विषचक्र को तोड़ने के लिए पूरे उल्लास से आराधना करनी पड़ती है, तभी आपको इसके फल का अनुभव होगा, और आपका उल्लास हमेशा बढ़ता ही रहेगा । पेट का विज्ञान कैसा है ? भूख लगती है तो खाया हुआ पच जाता है और खाया हुआ पचा तो भूख लग जाती है, ऐसा ही धर्म में भी है । उल्लास से करो तो फल का अनुभव होता है, और अनुभव होता है, तो उल्लास बढ़ता है ।

सभा :- पर उल्लास बढ़ाने के लिए क्या करना चाहिए ?

यह बात पूर्व में कही है - प्रभु के / गुरू के वचन पर श्रद्धा रखकर, धर्म के फल को नजर के सामने रखिए तो उल्लास बढ़ता है ।

सभा :- धर्म से सुख मिलता है, ऐसा कहा जाता है, पर हमने तो देखा है कि दुनिया में पापियों को सुख मिलता है और धार्मिक दुःखी है ! तो फिर धर्म के फल पर श्रद्धा कैसे होगी ?

उत्तर - जैनेतर रामायण में एक अच्छी बात बताई है । राम की सेनाने लंका में प्रवेश करने के लिए समुद्र में पत्थर का पुल बनाया - 'राम' का नाम लेकर जो पत्थर फेंका जाता था, वह समुद्र में तैरने लगता था, और उससे पुल बन गया । यह समाचार रावण की सेना को मिले और सारी सेना का लड़ने का उत्साह ही टूट गया । जिस शत्रु के नाम के पत्थर पानी में तैरते हों, वह शत्रु कितना शक्तिशाली होगा ? इस विचार से ही रावण की सेना हतोत्साहित हो गई । यह समाचार रावण को मिले और रावण ने सोचा कि ऐसे तो मैं लड़ने से पहले ही हार जाऊँगा । युद्धमैदान में तो लड़ाई बाद में होती हैं, पहले तो सैनिको के मन में ही लड़ाई होती है । यदि सैनिको के मन में अपार उत्साह, शत्रु को जीतने का प्रचंड आत्मविश्वास और जोश हो, तो सैन्य यदि छोटा भी हो, तो भी जीत जाता है । और यदि बड़े सैन्य के सैनिकों का उत्साह टूट जाए, तो वह हार जाते हैं । (अध्यात्म जगत भी ऐसा

ही है, दोष चाहे कितना भी बलवान हो, पर इसको नाश करने का संकल्प यदि दृढ होगा, पुरूषार्थ अगर मजबूत होगा, तो दोषनाश होता ही है ।)

रावण चिंता में पड़ गया, अपने सैन्य का उल्लास कैसे वापस लाया जाये ? इसका उपाय उसकी समझ में नहीं आ रहा था । मंदोदरी ने रावण को चिंताग्रस्त देखकर कारण पूछा–रावण ने बात बताई । मंदोदरी ने कहा, "इसमें क्या हुआ ? इसका उपाय तो सरल है । यदि राम के नाम से पत्थर तैरता है, यह सुनने से सैनिकों का उल्लास टूटता है, तो रावण के नाम से भी पत्थर तैरता है, इस समाचार से सभी का उल्लास फिर से आ जाएगा । आपभी अपने नाम से पत्थर तैराओ, आप भी महान हो ।"

रावण ने सीता का अपहरण चाहे किया हो, पर उसने जीवन में सुकृत भी वहुत किये थे । वह न्यायी राजा था, लोकप्रिय था । इसलिए मंदोदरी को विश्वास था कि रावण के नाम से भी पत्थर तैरेगा ही । रावण को उपाय मिल गया, और पूरी लंका में यह घोषणा करवा दी – "राजा रावण भी अपने नाम से पानी में पत्थर तैराएँगे ।" और पूरा सैन्य – सारी प्रजा समुद्रकिनारे इकट्ठी हुई ।

सबके सामने रावण ने पत्थर उठाकर फेंका–और आश्चर्य ! पत्थर तैरने लगा ! प्रजा ने रावण के नाम का जयनाद किया । सेना भी प्रचंड जोश में आ गई ।

रावण और मंदोदरी महल में वापस गए – रावण उदास हो गया । मंदोदरी को आश्चर्य हुआ, और पूछा – "अब उदासी किस बात की है ?" रावण ने कहा, "मंदोदरी, युद्ध में मेरा पराजय निश्चित है, यह समझ लो ।" मंदोदरी की समझ में कुछ भी नहीं आया – पूछा, "परन्तु आपके नाम से भी पत्थर तैरा – आप भी राम जितने ही बलवान हो, यह निश्चित हो गया, तो आपका पराजय कैसे ?" तब रावण ने बताया,

''मंदोदरी ! तूने और पूरी दुनिया ने यह देखा कि रावण ने पत्थर फेंका और पानी में तैरा, पर कोई यह जानता नहीं है कि रावण का फेंका हुआ पत्थर इसीलिए तैरा क्योंकि रावण ने भी राम का नाम लेकर पत्थर फेंका था ! यदि राम का नाम लेने से रावण जैसे पापी का फेंका हुआ पत्थर भी तैरता हो, तो मानना ही पड़ेगा कि राम की ताकत बहुत अधिक है, और युद्ध में रावण हारेगा ही ।''

मुझे यह कहना है कि आपको यह दिखाई देता है कि पापियों को सुख है, परन्तु उन्होने पूर्वभव में कहीं सुकृत किया है, जिसके पुण्य प्रभाव से ही उन्हें सुख-सामग्री मिली है, उनके पाप भी सफल हो रहे हैं, यह आपको दिखाई नहीं देता है । यही बड़ी आपत्ति है, नल खोलते ही पानी आ जाता है, पर यह तभी संभव है जब टंकी में पानी भरा हुआ हो, यदि टंकी में पानी भरने की मेहनत नहीं की हो, तो नल कितना भी खोलें, पानी नहीं आयेगा।

इसी तरह पाप के द्वारा सफलता मिलती हुई दिखाई देती है, परन्तु यह पूर्व में सुकृत द्वारा पुण्यबंध हुआ है, इसी कारण से हो रहा है। जिसके पास पुण्य नहीं है, उसका कोई भी पाप सफल नहीं होता। आपने भी अपने जीवन में अनुभव किया ही होगा, कि हर समय आपकी मेहनत सफल नहीं होती है । कभी लॉटरी लग जाती है, कभी बाजी उल्टी हो जाती है। समान मेहनत और समान बुद्धि होने पर भी ऐसा हो जाता है । यही पुण्य / पाप के प्रभाव का सबूत है ।

❖ एक बात हमेशा याद रखो - सुखं धर्मात्, दुःखं पापात् । सुख धर्म से ही मिलता है, दुःख पाप से ही आता है । जगत में कई जीव ऐसे हैं, जिनके पास कोई लंबी बुद्धि नहीं है । पढ़ाई भी कोई खास नहीं है, फिर भी वे जहाँ हाथ डालते हैं वहाँ सफलता मिलती है । और ऐसे भी जीव हैं, जिसकी बुद्धि कुशाग्र है, डबल ग्रेज्युएट हैं, मेहनत भी बहुत करते हैं, फिर भी आखिरकार उन्हें निष्फलता ही मिलती

है । इन सभी का कारण पुण्य का न होना ही है ।

इसलिए यह बात हृदय में तय कर लो कि पुण्य के बिना संसार में कोई सफलता मिलती ही नहीं है, और यदि पुण्य होगा, तो धूल में भी धान पक जाएगा, बालू में भी वाहन चलेगा !

हमें आपसे पूछना है, कि सुख धर्म से ही मिलता है, पुण्य से ही मिलता है, इस बात पर आपकी श्रद्धा कितनी है ? यदि आपके धंधे में आपकी मेहनत निष्फल जाती हो, तो आप क्या करेंगे ? मेहनत बढ़ाएँगे या पुण्य बढाएँगे ?

सभा : मेहनत बढाऐंगे ।

नल खोलने पर भी पानी न आता हो, तो क्या करोगे ? नल और खोलोगे या टंकी में पानी चढाऐंगे ?

सभा : टंकी में पानी चढाएँगे ।

कोई नल खोलता रहे, तो भी आप कहेंगे – "अरे, कितना भी नल खोलो, परन्तु पानी नहीं आएगा, क्योंकि टंकी में पानी नहीं है ।" इस तरह यदि आपकी मेहनत निष्फल जाती है, तो मेहनत ज्यादा करने से कुछ भी मिलने वाला नहीं है, पुण्य ही कम है !

❖ दूसरी बात हमें यह करनी है कि यदि आपकी मेहनत कभी सफल हो जाती है, तो यह समझ लो कि आपका पुण्य कम हो रहा है । आपके पास बैंक बैलेंस है, आप बेरर चेक लिखते है और केशियर आपको नगद रूपए देता है, तो आप खुश होते हो कि मुझे रूपए मिले ?

सभा : यह तो हमारे ही थे, जो दिए । तो इसमें खुशी कैसे होगी ?

उत्तर : उल्टा बैंक का बेलेंस कम हुआ, इसका दु:ख जरूर होता है; सही है ना ?

इसी तरह आप अपने पुण्य का फल भोगते हो तब मेहनत सफल होती है, इसमें क्या खुश होना ? उल्टा बैलेंस घट रहा है, यह दिखाई देता

है ? यदि कोई बैंक में से पैसे निकालता ही जाता है, जमा करवाता ही नहीं है, तो एक दिन ऐसा आता है कि बेलेन्स Nill हो जाता है, और फिर यदि आप चेक लिखो तो वह 'बाउन्स' हो जाता है । (अब तो चेक 'बाउन्स' हो जाए तो जेल की सजा भी होती है ।)

इसी तरह यदि सुख भोगते ही जाओगे, तो पुण्य कम होता ही जाएगा, इसका बैलेन्स कम होता जाएगा । यदि सुकृत करके पुण्य का बैलेंस बढ़ाओगे नहीं, तो एक दिन यह बैलेंस Nil हो जाएगा । और फिर आप जितनी भी मेहनत करो, तो भी सफलता नहीं मिलेगी, यह आपको पता है ? जिस तरह व्यक्ति बैंक से पैसे निकालकर खर्च करता है, वैसे ही जमा भी कराने जाता है, जिससे बैलेंस जमा रहता है । इसी तरह आपको भी सुकृतों के द्वारा पुण्य का बैलेंस बढ़ाते हुए जमा रखना चाहिए ।

जिसके पास आमदनी कम होती है, वह भावि जिंदगी का विचार करके थोड़ी-थोड़ी ही रकम निकालता है, इसी तरह पुण्य का खर्च भी सोच-विचार कर करना चाहिए ।

❖ संसार के क्षेत्र में सफलता का आधार ९९% पुण्य पर है। १% पुरूषार्थ पर है ।

दूध में शक्कर डालने से दूध मीठा होता है या हिलाने से ? मात्र शक्कर डालने से मीठा नहीं होता । इसी तरह यदि शक्कर डाले बिना १ घंटे तक हिलाओ तो भी मीठा नहीं होगा । दोनों ही जरूरी है, फिर भी महत्व शक्कर का है, हिलाने का नहीं ।

इस प्रकार संसार के क्षेत्र में पुण्य और पुरुषार्थ दोनों के आधार पर सफलता मिलती है, फिर भी महत्त्व पुण्य का ही है । पुरूषार्थ गौण है ।

❖ पुण्य प्रचंड था, तब जिनके इशारों से पर्वत भी रास्ता दे देते थे, उनका पुण्य खत्म हुआ, तब भीख मांगने का अवसर आ गया । विश्वविजेता

बनने को निकले हुए नेपोलियन की सेना जा रही थी और रास्ते में एक पर्वत आया। सैनिकों ने नेपोलियन को सूचना दी - "आगे तो पर्वत है, जाने का रास्ता ही नहीं हैं।" नेपोलियनने जवाब दिया "नेपोलियन कभी वापस नहीं जाता है। पर्वत है तो क्या हुआ ? हथौड़ा लेकर टूट पड़ो। पर्वत को तोड़कर रास्ता बनाओ"। इतिहास कहता है - नेपोलियन की सेना ने पर्वत तोड़कर आगे जाने का रास्ता बनाया ! ऐसे नेपोलियन के अंतिम दिन सेंट हेली के टापु पर कैद में बीतें हैं।

❖ आपको भरोसा किसके ऊपर है?-पुण्य पर या पैसों पर ? पैसे चोरी हो सकते हैं, लूटे भी जा सकते हैं, पर पुण्य कभी निष्फल नहीं जाता है।

यदि पुण्य होगा और पैसे नहीं भी होंगे, तो पैदा हो जाएँगे। पुण्य खत्म होगा तो - पैसे होंगे, तो भी चले जाएँगे ! अब पुण्य के बदले पैसा चाहिए या पैसे के बदले में पुण्य ? जिसे पुण्य पर भरोसा है, वह मिली हुई संपत्ति का सदुपयोग करता जाएगा और नया पुण्य बांधता जाएगा। जिसे पैसों पर भरोसा ज्यादा है, वह पुण्य को खर्च करके पाप के रास्ते पर पैसा कमाता है, इकठ्ठा करता है, धर्म में खर्च नहीं करता है।

❖ पुण्य भी दो प्रकार के हैं, पुण्यानुबंधी पुण्य और पापानुबंधी पुण्य। पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय हो तो सुख-सामग्री के साथ सद्बुद्धि भी मिलती है। सद्व्यय करने का - आराधना करने का मन होता है। पापानुबंधी पुण्य का उदय हो तो सुखसामग्री तो मिलती है, पर सद्बुद्धि नहीं मिलती।

❖ जैसे-जैसे संपत्ति बढ़ती है, वैसे-वैसे मौज-शौक बढ़ते हैं, घूमने-फिरने का शौक बढ़ता है, गाड़ी-बंगला इत्यादि पाप के साधन बढ़ते जाते हैं, धर्म का समय घटता जाता है, तो समझना कि पापानुबंधी पुण्य है।

❖ अचानक बड़ी संपत्ति हाथ में आए, ५-१० लाख रूपये की कमाई हो जाए, तो उसका क्या करते हो ? यदि उस समय इस संपत्ति से गाड़ी

लेने का, बंगला बनवाने का मन हो, तो समझना कि पापानुबंधी पुण्य है। यदि उस समय मंदिर-उपाश्रय बनवाने का, धर्म के क्षेत्र में व्यय करने का मन हो, तो समझना कि पुण्यानुबंधी पुण्य है। आपका पुण्य कैसा है ?

❖ पापनुबंधी पुण्य भले ही पुण्य कहलाता हो, आत्मा के लिए तो नुकसानकारक ही हैं।

❖ आपकी कमाई का कितना हिस्सा आप धार्मिक कार्यों में खर्च करते हो? इसी के आधार पर आपका पुण्य पुण्यानुबंधी है या पापानुबंधी इसका निर्णय हो जाएगा। यदि बड़ा हिस्सा धार्मिक कार्यों में खर्चा होता है तो पुण्यानुबन्धी और यदि बड़ा हिस्सा सांसारिक कार्यों में खर्च होता है तो पापानुबंधी।

❖ शास्त्रकारों ने श्रावक को अपनी कमाई का २५% धर्मक्षेत्रमें उपयोग करने को बतलाया है। पहले से ही यह निश्चय कर लेने से बहुत फायदे होते हैं।

(१) पैसा खर्च करने का निश्चय कर लेने का बाद इसका कहाँ उपयोग करना ? इसके लिए योग्य स्थान आप ढूँढते रहते हो, इस कारण ध्यान शुभ बनता है।

(२) कोई पानड़ी होती है, तो लिखाने की राह नहीं देखते, बल्कि उल्लासपूर्वक स्वयं लिखाते हो।

(३) देने के बाद "देने पड़े" ऐसा भाव नहीं आता है, पर "मुझे जो पैसे खर्च करने थे, उसके लिए योग्य स्थान मिल गया" ऐसा आनंद होगा।

(४) "मैं पैसा देकर उपकार करता हूँ" ऐसा भाव भी नहीं आता है। बल्कि "मुझे जो पैसे खर्च करने थे, उसके लिए योग्य स्थान बताकर आपने उपकार किया" ऐसा भाव आएगा।

(५) पैसा खर्च करने में उल्लास बढ़ता है - इतनी ही रकम का उपयोग करने पर भी पुण्यबंध अनेकगुणा होता है, अनुबंध शुभ और बलवान

होता है । इसलिए प्रत्येक धनवान - संपत्तिवान श्रावक को प्रति वर्ष निश्चित रकम धर्मक्षेत्र में खर्च करना है अथवा कमाई या बचत का एक निश्चित हिस्सा धर्मक्षेत्र में खर्च करना है, ऐसा नियम कर लेना चाहिए । सभी को यह सीख है कि एक बार यह नियम करके देखो, फिर पता चलेगा कि इसमें कितना मजा है ।

❖ अपने लिये कंजूसी और परोपकार में उदारता - यह पुण्यानुबंधी पुण्य का लक्षण है ।

❖ पूर्वकाल में श्रावकों का पुण्य बलवान भी था और शुभानुबंधी भी था। आनंद श्रावक इत्यादि की संपत्ति की सूचि पढ़कर, आँखें चौड़ी हो जाती हैं । अरे, वर्त्तमान इतिहास में हुए जगडूशाह, खेमो देदराणी के पास भी अपार सम्पत्ति थी । इतना ही नहीं, संपत्ति होने पर भी न तो अभिमान था, न ही आसक्ति थी ।

धर्मबिंदु ग्रन्थ में हरिभद्रसूरिजी म. सा. बतलाते हैं कि शुद्ध धर्म के फलस्वरूप जो संपत्ति मिलती है, वह बिना मेहनत किए सहज ही मिल जाती है, और इसमें आसक्ति भी नहीं होती । वर्तमान काल में आपके पास पुण्य है पर निर्बल और प्रायः अशुभानुबंधी है ।

बहुत मेहनत, कितने ही पाप/आरंभ/समारंभ/संक्लेश करने के बाद पैसा आता है, और आने के बाद प्रायः बुद्धि को बिगाड़ देता है ।

❖ पुण्य के उदय को टिकाए रखना हो तो, पुण्य के उदय से मिली हुई सामग्री के प्रति आसक्ति मत रखो, पुण्य के उदय से मिली हुई संपत्ति को बाँटते रहो ।

(४) सम्यक्त्व का चौथा दोष है, मिथ्यात्वियों के गुणों का वर्णन....

अर्थात् जिसे जैन धर्म के ऊपर श्रद्धा नहीं है, ऐसे अन्य धर्म के लोगों के गुणों का वर्णन ।

इनके गुणों का वर्णन इस तरह किया जाये जिससे अन्य धर्म की प्रशंसा हो और जैनधर्म की निंदा, तो यह सम्यक्त्व में दोष रूप होता है ।

प्रश्न – परन्तु सभी के गुणों की प्रशंसा करने की बात तो शास्त्रकारों ने ही कही है । महोपाध्याय यशोविजयजी म. सा. ने भी अमृतवेल की सज्झाय में कहा है कि दूसरे धर्म के लोगो में विद्यमान दया आदि गुणों की प्रशंसा करनी ही चाहिए ।

उत्तर – किसी भी व्यक्ति का जो गुण, जिनवचनानुसार है, उसकी मानसिक अनुमोदना करने का तो कोई निषेध है ही नहीं । यहाँ जो निषेध किया गया है, वह वचन से प्रशंसा करनेका है । और वह भी इस तरह कि जिससे दूसरे धर्म की महत्ता बढ़े... जैनधर्म की महत्ता घटे ।

(अनुमोदना मन से होती है, प्रशंसा वचन से होती है, यह दोनों के बीच भेद है ।)

ऐसा न हो, इस तरह किसी के गुणों की प्रशंसा करने में कोई समस्या नहीं, फिर चाहे वह मिथ्यात्वी भी हो ।

उदाहरण – किसी व्यक्ति पर यदि किसीने गाली की बरसात की हो, तो भी वह व्यक्ति क्षमा करे, मौन पूर्वक सहन करे, उसकी आप प्रशंसा करो कि "आपने अद्‌भुत क्षमाभाव रखा" तो इसमें कोई समस्या नहीं है । पर अगर ऐसी प्रशंसा करो कि "ईसाई पादरी बहुत क्षमाशील होते हैं, चर्च में अनुशासन बहुत अच्छा होता है ।" तो इससे ईसाई धर्म की महत्ता बढ़ जाती है, और सम्यक्त्व को दोष लगता है । ऐसी प्रशंसा का शास्त्रकारों ने निषेध किया है ।

प्रश्न – परन्तु यह बात तो सच ही है ना ?

उत्तर – सच हो तो भी सबके सामने प्रशंसा नहीं करनी चाहिए । और दूसरी बात है कि ये गुण ज्यादातर आभासिक–कृत्रिम होते हैं । यह बात शास्त्रों के गहरे रहस्य को जाननेवाले ही समझ सकते हैं ।

(५) सम्यक्त्व का पाँचवां दोष है, अन्य धर्मावलम्बियों के साथ संग–सहवास ।

नदी का पानी चाहे कितना भी मीठा हो, परन्तु समुद्र में गिरते ही खारा हो जाता है । एक भी सड़ा हुआ आम सारे आमों को सड़ा देता है । कुसंगति का यह प्रभाव अनुभवसिद्ध है । इसीलिए शास्त्रकार कहते हैं कि अन्य धर्म की जो पकड़ रखते हैं और जैन धर्म के प्रति द्वेष रखते हैं, अथवा संपूर्ण नास्तिक है, ऐसे लोगों का संग-सहवास कभी नहीं करना चाहिए । क्योंकि वे लोग अनेक प्रकार के कुतर्क और प्रश्न करके आपकी मति को दुविधा में डाल देंगे, आपके मन में परमात्मा के अस्तित्व के प्रति / परमात्मा के वचनों के प्रति शंका उत्पन्न करेंगे, श्रद्धा विचलित कर देंगे । इससे आपका सम्यकत्व मलिन होकर नाश हो जाएगा, इसकी पूरी संभावना है । इसलिए इनकी संगति नहीं करनी चाहिए ।

❖ किसी का भी सर्जन मुश्किल होता है परन्तु विसर्जन सरल होता है । मकान बनाने में सालों लग जाते हैं और तोड़ने में एक दिन भी नहीं लगता । पर्वत चढ़ने में घंटों लग जाते हैं, शिखर पर चढ़ते-चढ़ते साँसें फूल जाती हैं, जबकि नीचे गिरने में एक क्षण भी नहीं लगता है, १ धक्का ही काफी होता है । इसी प्रकार किसी गुण को प्रकट करने अथक पुरूषार्थ चाहिए, पर गुणों का नाश तो थोडी ही मेहनत से हो जाता है, इसका कारण यह है कि दोषों का अभ्यास अनादि काल का है । इसी तरह अनेक सत्संग करके जो प्राप्त किया है, वह एकाध समय के कुसंग से ही नाश हो जाता है, इसलिए कुसंग से दूर ही रहना चाहिए ।

❖ कुसंग दो प्रकार के हैं - (१) श्रद्धाभ्रष्ट करनेवाला और (२) आचारभ्रष्ट करनेवाला ।

❖ वर्तमान काल के शिक्षित, बौद्धिक लोग, विज्ञान पर श्रद्धा रखने वाले - लगभग नास्तिक होते हैं । आत्मा-परलोक इत्यादि बातों को बिल्कुल गलत मानते हैं और बुद्धि, शक्ति प्रखर होने के कारण सचोट तर्क देकर,

दूसरों की बुद्धि को भ्रष्ट करने में सक्षम होते हैं। ऐसे लोगों से दूर रहने में ही कल्याण है। हमारे पास इनके प्रश्नों का जवाब नहीं है, ऐसा नहीं है ! हमारे शास्त्रो में पन्ने भरकर चर्चाएँ हैं, सचोट तर्क भी हैं, परन्तु यह सबकुछ सूक्ष्मबुद्धि से ही जाना जा सकता है। सामान्य मनुष्य का इसमें कोई काम नहीं है, इसलिए ऐसे लोगों का जवाब देने का काम महाबुद्धिमान गीतार्थों के ऊपर छोड़कर, आपको तो उसे नव गज का नमस्कार ही करना चाहिए। 'आपके स्कूल के शिक्षक-मित्र, कॉलेज के शिक्षक-मित्र, नौकरी धंधा, पास-पड़ोस सभी जगह ऐसे लोग मिलते हैं। क्योंकि आज के समय में विज्ञान का ही बोलबाला है, धर्म को तो कोई मानता ही नहीं है। यदि आपको अपनी श्रद्धा अखण्ड रखनी हो, तो ऐसे लोगों को परखकर उनसे दूरी बनाकर ही रखनी पड़ेगी।

जिसे परमात्मा-धर्म पर श्रद्धा है, उसके साथ ही मित्रता रखनी चाहिए, जिससे फालतू चर्चा हो ही नहीं। मान लो यदि धंधा-नौकरी आदि के कारण, ऐसे लोगों से आपको संबंध रखना ही पड़े, तो भी जरूरत की ही बात करना चाहिए, ज्यादा संबंध नहीं रखना चाहिए। इसमें यदि कोई बात ऐसी हो, जिससे जैन धर्म की निंदा होती हो, जिनवचन के विरूद्ध बातें होती हो, आपकी श्रद्धा भ्रष्ट करे, ऐसी दलीलें हों, तो स्पष्ट रूप से उसे बता दो कि ऐसी बातें आपके साथ कभी न करे। ऐसी बातों में रुचि लेनी ही नहीं चाहिए।

जिसके पास विशाल ज्ञान, सचोट तर्कशक्ति हो, उन्हें जवाब देने की शक्ति हो, तो वह जवाब दे सकता है। बाकी उनको जवाब देने की मेहनत आपको नहीं करनी चाहिए। ऐसा करने से आप झूठे पडेंगे और जैन धर्म की अवहेलना अधिक होगी।

❖ कई लोग जैन धर्म में होने पर भी, श्रद्धाभ्रष्ट करने वाली बातें करते हैं - जैसे कि ''सामायिक - प्रतिक्रमणादि व्यर्थ हैं, जिनपूजा में हिंसा

है, ध्यान-भावभक्ति - भाव प्रतिक्रमण इत्यादि ही करना चाहिए।" ऐसे लोगों का भी साथ नहीं करना चाहिए।

सभा : परन्तु उनको सच बताने के लिए - सुधारने के लिए तो उनका साथ करना ही पड़ता है ना ? नहीं तो उनको सुधारेगा कौन ?

उत्तर - नदी में कोई डूबता हो, तो उसे बचाने के लिए कौन नदी में कूदेगा ? जिसे तेज गति से तैरना आता हो, जिसके पास तैरने की शक्ति हो, डूबते हुए व्यक्ति को जो खुद खींच सके ऐसा व्यक्ति ही ना ? ऐसी शक्ति न हो, और आप उसे बचाने के लिए कूदो, तो क्या होगा? आप ही डुबोगे। यही यहाँ समझाना है, कि जिसके पास शास्त्राभ्यास का सशक्त आलम्बन है, देव-गुरू कृपा का आशीर्वाद है, सचोट तर्क-शक्तिरूपी शस्त्र है, वह उन्हें समझाए, वह भी यदि उनमें प्रज्ञापनीयता दिखाई देती हो, तो। क्योंकि उनकी स्वयं की श्रद्धा इतनी दृढ़ होती है कि उन्हें कोई विचलित नहीं कर सकता। यदि उनके पास किसी प्रश्न का उत्तर नहीं हो, तो भी उनका विश्वास डगमगाता नहीं है। यदि किसीके पास ऐसा शास्त्राभ्यास - गुरूकृपा इत्यादि नहीं है, तो वह ऐसा साहस नहीं कर सकता, क्योंकि इसमें बहुत बड़ा जोखिम है कि यदि स्वयं ही प्रश्नों के जवाब न आएँ, तो श्रद्धा डगमगा जाती है और यदि स्वयं की श्रद्धा नहीं डिगे तो भी सही उत्तर न देने के कारण, जैनधर्म की अवेहलना तो होती ही है। जहाँ प्रश्न करनेवाला व्यक्ति कदाग्रही हो, समझनेवाला ही नहीं है, वहाँ सक्षम गीतार्थ भी उनके साथ चर्चा में नहीं उतरते हैं, क्योंकि परिश्रम व्यर्थ होता है। यदि वह व्यक्ति अत्यन्त बुद्धिमान हो, जो कुतर्क करके आपको पराजित कर देगा अथवा अति बलवान है तो बल का प्रयोग करके तंत्र-मंत्रादि से आपको हैरान कर देगा, उस के साथ भी चर्चा नहीं करनी चाहिए। किसके साथ चर्चा करनी चाहिए, किसके साथ नहीं करनी चाहिए, यह महोपाध्याय यशोविजयजी म. सा. ने वाद द्वात्रिंशिका में सुंदर ढंग से समझाया है।

❖ दूसरे प्रकार का कुसंग, आचारभ्रष्ट करता है । ज्यादातर खराब आदतों का जन्म कुसंग से ही होता है । मुझे मुम्बई के वालकेश्वर में एक जैन युवक मिला था । मुझे कहता था कि "साहेब, ९०% जैन कॉलेज के युवक दारू पीते हैं ! इसमें अच्छे से अच्छे धर्मी कहलाने वाले परिवार के लड़के भी हैं !" मैंने उसे कहा, "यह वालकेश्वर में होगा, परन्तु सभी जगह ऐसा नहीं है ।" फिर भी वह मानने को तैयार नहीं था । कहने का अर्थ यह है कि, उस क्षेत्र में रहने वाले को कुसंग के प्रभाव से दारू का पहले शौक लगता है और फिर आदत पड़ जाती है । ऐसा ही जुआ, सिगरेट, पान-मावा-गुटखा का भी होता है । गुटखा का व्यसन तो सभ्य समाज में सभी लोगों में फैला है १ गली, १ नाका, १ फुटपाथ, १ भी ट्रेन बस ऐसी नहीं मिलती है, जिसमें गुटखे की पुडिया देखने को नहीं मिले । अरे ! शत्रुंजय की सीडी के दोनों ओर हजारों गुटखों के पैकेट देखने को मिलते हैं ।

शरीरको खत्म करनेवाला, परिवार को बरबाद करनेवाला यह व्यसन, कुसंग से ही प्रवेश करता है ।

❖ जिसे इन सभी व्यसनों से बचना है, उसे व्यसनियों की संगति से बचना चाहिए । और उसके आग्रह के सामने 'ना' कहने की हिम्मत करनी चाहिए । यदि एक बार कोई ना नहीं कह सका तो उसे फिसल जाने में समय नहीं लगेगा । इन व्यसनों के अलावा क्रिकेट का जुआ, शेअर का जुआ, इत्यादि अनेक पाप कुसंग से आते हैं ।

यदि जीवन को गुणों से सुगंधित बगीचे जैसा बनाना हो, तो गंदगी से दूर रहना ही पड़ेगा, इतनी सीधी-सादी बात तो आपको समझनी ही पड़ेगी ।



सम्यक्त्व के आठ आचार

सम्यक्त्व के आठ आचार शास्त्रकारों ने बताएँ हैं ।

(१) निःशंकित - जिनवचन में शंका नहीं करना ।

(२) निष्कांक्षित - अन्य धर्म की इच्छा नहीं करना ।

(३) निर्विचिकित्सा - धर्म के फल में शंका नहीं करना ।

इन तीनों बातोंकी चर्चा हमने ५ दोषों में की है ।

(४) अमूढ़दृष्टि - दूसरे देव-देवी के प्रभावों को, चमत्कारों को देखकर आकर्षित न होना ।

प्रभाव-चमत्कार ये सभी पुण्य के आधीन हैं । मिथ्यात्वी देव, अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए, लोगों को आकर्षित करने के लिए, अनेक प्रकार के चमत्कार दिखाते हो यह सम्भव है । इनमें आकर्षित होने जैसा कुछ नहीं है ।

❖ सच्ची महानता तो गुणों से आती है । परमात्मा का पुण्य बहुत जबरदस्त है, यह हमने देखा है । परन्तु महोपाध्याय यशोविजयजी म. सा. ने ३२-३२ में बताया है कि प्रभु की महानता पुण्य के कारण नहीं हैं । समवसरण इत्यादि तो इंद्र भी माया से बना सकता है, इससे किसी की महानता सिद्ध नहीं होती है ।

प्रभु की महानता, उनके गुणों के कारण है । इसलिए सम्यकत्वी, मात्र दूसरों के प्रभाव या चमत्कार को देखकर अपनी श्रद्धा से विचलित नहीं होता है । वह यह जानता है कि "यह सब देव के प्रभाव से संभव है । इसमें कोई नई बात नहीं है, वास्तवमें जो गुणवान है, वही महान है ।"

❖ आपको किसका आकर्षण है ? पुण्य का या गुण का ? दुनिया के ज्यादातर लोग पुण्य से ही आकर्षित हो जाते हैं, गुण देखने की तो

उनकी दृष्टि ही नहीं होती । इस समय में मिथ्यात्वियों का बल ज्यादा है, इसलिए उनका प्रभाव दिखाई देता हैऔर लोग उनकी और ज्यादा आकर्षित होते हैं ।

जो सम्यक्त्वी है, उसकी दृष्टि गुणों की ओर ही रहती है । गुण देखकर वे मस्तक झुकाते हैं, मात्र प्रभाव देखकर नहीं । जहाँ गुणों की ओर दृष्टि ही न हो, मात्र प्रभाव का ही बोलबाला हो, वह मूढ दृष्टि है ।

(५) उपबृंहणा -सम्यकत्व का पाँचवाँ आचार है, - दूसरों के गुणों की - सुकृतों की प्रशंसा करना । जिसे गुण अच्छे लगते हैं, उसे गुणवान भी अच्छे लगते हैं । और इसलिए वह गुणवान की प्रशंसा किए बिना नहीं रहता ।

❖ ललितविस्तरा में हरिभद्रसूरि म. सा. कहते है - गुणों की उपबृंहणा यह धर्म का बीज है । जिससे आगे जाने पर इहलोक - परलोक के सुखरूपी फूल और मोक्षरूपी फल मिलता है ।

जिस तरह बगीचे में फूल भी होते हैं और काँटे भी होते हैं, पर भ्रमर फूल पर ही बैठता है ।

उसी तरह हर छद्मस्थ व्यक्ति में गुण और दोष दोनों होते हैं, पर समकिती की दृष्टि गुणग्राही होती है, उसे गुण ही दिखाई देते हैं । दूसरों की बात तो दूर रही, पर साधु भगवंत और श्रावकों के तो आपको गुण ही दिखाई देते हैं ना ? या दोष भी ? दारू पीनेवाले, चारित्रहीन फिल्म के एक्टर और अपने स्वार्थ की खातिर देश के गौरव को बेचनेवाले क्रिकेटरों की आप खुले दिल से प्रशंसा करते हो और कलिकाल में आश्चर्य के समान जीवन जीने वाले साधु भगवंत में कभी कोई छोटा सा भी दोष देखने को मिल जाए, तो उनके सभी गुणों की उपेक्षा करके, दोषों का ढोल पीटते हो... यह कैसी विषमता है ?

❖ एक ही पेड़ से सभी प्रकार के फलों की आशा नहीं रखी जा सकती, तो एक ही व्यक्ति में सारे गुण होने की आशा कैसे रखी जा सकती

है ?

जो तपस्वी हो वह शायद क्षमाशील न भी हो ।

जो दानवीर हो वह शायद चौविहार नहीं भी करता हो । सामायिक करनेवाला शायद उदार नहीं भी हो । परन्तु इससे उसके आराधना - गुण निंदनीय नहीं होते हैं ।

❖ गुण न हो और गुणों के प्रति अनुराग हो, तो वह गुणों को खींचकर ले आता है । गुण हो, पर यदि गुणों के प्रति अनुराग न हो, तो गुणों का नाश हो जाता है ! वास्तव में तो ऐसे गुण भी आभासिक हैं । इसलिए गुणानुराग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण है और जो गुणानुरागी है, वह दूसरों के गुणों की प्रशंसा किए बिना नहीं रहता ।

❖ आपको आपके ही गुण अच्छे लगते है, या दूसरों के भी गुण अच्छे लगते हैं ? यदि आपको दूसरे के गुण अच्छे लगते हों, तो गुणों की प्रशंसा किए बिना आप नहीं रहोगे । और यदि मात्र आपको अपने ही गुण अच्छे लगते हों, तो वे 'ममत्व' के कारण अच्छे लगते हैं, गुणों के कारण नहीं !

❖ यदि किसी के विवाह की पत्रिका आती है, तो आप भेंट देते हो, तो फिर किसी की दीक्षा की, बड़ी तपश्चर्या के पारणे कीया ऐसी कोई सुकृत की पत्रिका आए, तो क्या आप बहुमान भेजते हो ? अनुमोदनार्थ ५० पैसे का पोस्टकार्ड भी लिखते हो ?

(६) स्थिरीकरण - सम्यकत्व का छठा आचार है - स्थिरीकरण अर्थात् जो धर्म में कमजोर पड़ता हो, उसे स्थिर करना ।

❖ वर्तमान काल में समाज की मनोवृत्ति विचित्र बन गई है । धर्म में प्रोत्साहन देने वाले बहुत कम हैं । प्रायः दृढ.धर्मी को लोग अपमानित करते हैं, उन्हें धर्म से भ्रष्ट करने का प्रयत्न करते हैं । आप दूसरों को धर्म में स्थिर करो या नहीं, यह बात तो बाद की है, पहले दूसरों को धर्म से भ्रष्ट करने का प्रयत्न तो नहीं करते हो, इतना तो निश्चित है

ना ? आप यदि रात्रिभोजन करते हो । ४-५ मित्र बाहर घूमने गए हो, रात को खाना हो, पर एकाध मित्र रात को नहीं खाता हो, तो आप उसे खाने का आग्रह तो नहीं करते हैं ना? नहीं खाने पर मश्करी तो नहीं करते हैं ना ? यदि आपके मन में निश्चित रूप से धर्म बसा हुआ होगा, तो ऐसे विपरीत वातावरण में भी रात्रिभोजन त्याग का नियम रखने के लिए आप उसकी अनुमोदना-प्रशंसा करोगे, उससे आलंबन लेकर आप भी रात्रिभोजन छोड़ोगे, आखिर उसकी शर्म से भी छोड़ोगे।

❖ वालकेश्वर में एक परिवार के सभी सदस्य काली चौदश के दिन हमारे गुरूदेवश्री के पास आए और दो दिन तक मिठाई- नमकीन नहीं खाने का नियम मांगा । गुरुदेव को आश्चर्य हुआ - पूछा ''दिवाली के दिनो में मिठाई की बाधा क्यों ?''

परिवार के मुख्य सदस्य ने बहुत अच्छी बात कही ।

''घर के सभी बालकों ने दिवाली का छट्ठ किया है, अगर हम मिठाई-नमकीन खाएँगे तो यह देखकर उनका भी मन होगा । इसलिए उनका छट्ठ करने का परिणाम टिका रहे, खाने का मन न हो, इसलिए हम सभी ने मिठाई-नमकीन का त्याग करने का निश्चय किया है ।''यह है धर्म के प्रति प्रेम !

❖ कई बार ऐसा देखा जाता है कि पति को धर्म के प्रति अभिरुचि कम होती है, और पत्नी उल्लास से बहुत आराधना करती है ।

आप यदि ऐसे पतिदेव में से होंतो आपसे पूछना है कि आप अपनी पत्नी को धर्म से दूर करने का प्रयत्न तो नहीं करते हो ना ?

❖ दूसरों को धर्म बताना यह श्रेष्ठ उपकार है, तो दूसरों को धर्म से भ्रष्ट करना, बहुत बड़ा अपकार है ।

❖ आपका फर्ज तो यह है कि कोई भी श्रावक / श्राविका यदि धर्म से दूर होता हो, तो उसे समझाकर / प्रोत्साहन देकर / सहायता कर स्थिर रखना। यही सम्यकत्वी का आचार है ।

७) वात्सल्य - चतुर्विध संघ के प्रति आंतरिक प्रीति यह 'वात्सल्य' नाम का सातवाँ आचार है। इस विषय पर हमने पूर्व में विवेचन किया है।

८) प्रभावना - शासन प्रभावना आठवाँ आचार है। लोगों के हृदय में जिनशासन के प्रति सद्भाव-बहुमान प्रगट हो। "अहो ! कैसा सुंदर जिनशासन ! कैसे इनके भगवान ! कैसे इनके साधु ! कैसा इनका तत्वज्ञान !" ऐसा भाव पैदा हो, ऐसी कोई भी प्रवृत्ति, यह शासन प्रभावना है।

❖ कितने ही लोगों के मन में यह भ्रम पैदा हो गया है कि जितने ज्यादा बैंड-बाजे हों, जितनी ज्यादा खाने-पीनेकी व्यवस्था हो, उतनी अच्छी शासन प्रभावना होती है। पर कई बार ऐसा होता है कि विवेक नहीं रखने के कारण शासन प्रभावना के स्थान पर कभी शासन की अवहेलना हो जाती है।

रथयात्रा - वरघोड़ा-सामैया, ये सभी शासन प्रभावना के अच्छे माध्यम हैं, परन्तु विवेक और सावधानीपूर्वक आयोजन हो, तभी शासन प्रभावना का कारण बनते हैं। विशेष करके ऐसे महोत्सव के साथ-साथ अनुकंपा, गरीबों को भोजन देना इत्यादि आयोजन होते हैं, तो इससे लोगों में जैनशासन की खूब प्रशंसा होती है, और यही सच्ची शासन प्रभावना है। बाकी, शिष्ट और सज्जन लोग जिसकी निंदा करे, ऐसा आयोजन यदि होता है, तो वह शासन प्रभावना कैसे बनेगी ?

❖ शासन प्रभावना यह उत्कृष्ट कोटि का धर्म है, इसी तरह शासनमालिन्य जघन्य पाप है। ऐसी बातें सार्वजनिक रूप से कही जाए, छपाई जाए, जिसके कारण अनेक लोग जैन संघ की, जैन धर्म की, जैन साधु की निंदा करें, जैन धर्म से विमुख हों, तो यह शासनमालिन्य है। और इससे गाढ मिथ्यात्व और मोहनीय कर्म बंधते हैं, दुर्लभबोधि बनते हैं।

❖ खास यह ख्याल में रखना है, कि अनुकंपा के कार्य (जैसे खिचड़ी

घर आदि) इसी तरह करने चाहिए, जिससे ज्यादा से ज्यादा शासन प्रभावना हो । ''ये जैन लोग कर रहे हैं'' ऐसा सभी को पता चले । इसलिए ऐसे बैनर के नीचे ही ऐसे काम करने चाहिए । इस तरह ऐसे कामों की उद्घोषणा भी करनी चाहिए–जिससे समान्य लोगों को भी पता चले कि ''जैन लोग मानवता के कार्य भी करते हैं, मात्र मंदिरों में ही पैसे नहीं खर्च करते हैं ।'' ऐसा करने से लोगों के हृदय में जैनों के प्रति सद्भाव आता है, जो शासन प्रभावना है ।

प्रश्न – पर वैसे तो, अपने सुकृतों की घोषणा नहीं करनी चाहिए, ऐसा कहा जाता है ।

उत्तर – यह बात व्यक्तिगत स्तर की है, आप अपने सुकृत की घोषणा न करो, यही ठीक है । पर अनुकंपा जैसे कार्य में, 'जैनसंघ' यह कर रहा है, ऐसी घोषणा बहुत जरूरी है क्योंकि

(१) बहुत सारे लोगों को जो ऐसा भ्रम है कि जैन लोग पत्थर में ही पैसे खर्च करते हैं, यह दूर हो जाता है ।

(२) जिसे सहायता मिलती है, उसके मन में जैनों और उनके भगवान के प्रति आदर भाव होता है, यह बोधिबीज बनता है ।

(३) लोगों में जैनों की प्रशंसा होती है – ''जैन लोग समाज के सुंदर कार्य करते हैं ।''

ये सभी लाभ बहुत बड़े हैं, इसलिए ऐसे सुकृतों की घोषणा हो, इस प्रकार से करने चाहिए ।



औचित्य

❖ जिस अवसर पर जो उचित है, वैसी आराधना करने से ही कर्मनिर्जरा होती है ।

योगशतक में हरिभद्रसूरिजी म. सा. ने मोक्षमार्गरूपी योग की व्याख्या की है, 'सर्वत्र उचित करना यही योग है ।' धर्मबिंदु में हरिभद्रसूरि म. सा. बतलाते हैं कि जो अनुचित हो, ऐसी आराधना यदि करे, तो अकामनिर्जरा होती है, और मोक्षफलक नहीं बनती है ।

जब कोई साधु बीमार हो, तब उसकी वैयावच्च करने के बदले स्वाध्याय करने बैठे, तो वह अनुचित है, और इस तरह स्वाध्याय करने पर ज्ञानावरणीय कर्म बंधता है, खपता नहीं है, मोहनीय कर्म भी बंधता है, ऐसा हमारे गच्छाधिपति प. पू. आचार्य भगवन्त श्रीमद् विजयजयघोषसूरीश्वरजी म. सा. ने कहा है । तीर्थ में गए हों, तब वहाँ परमात्माभक्ति उचित होती है । ज्ञानी प्रवचनकार महात्मा पधारे हों, तब सत्संग-प्रवचन श्रवण प्रधान होता है । जब संघरक्षा / शासनरक्षा का कोई कार्य आ जाए, तब व्यक्तिगत आराधना गौण हो जाती है ।

ऐसे समय पर व्यक्तिगत आराधना के कारण संघ का महत्वपूर्ण कार्य न करे, तो यह अनुचित कहलाता है । इसलिए प्रत्येक पच्चक्खाण में शास्त्रकार परमर्षियों ने 'महत्तरागारेणं' नामका आगार रखा है, जिसका अर्थ है कि संघ का कोई ऐसा बड़ा कार्य आ जाए तो पच्चक्खाण तोड़ने पर भी पच्चक्खाण भंग का दोष नहीं लगता है । (प्रभुशासन कितना सुंदर है ! यह भी इससे समझ आ जाता है ।)

❖ धर्मबिंदु में हरिभद्रसूरिजी म. सा. ने बताया है कि अनुचित आराधना के मूल में कोई न कोई असद् आग्रह तो होता ही है।

उदाहरण :- जिसे स्वाध्याय का तीव्र आग्रह हो, वह दूसरे ग्लान साधु की वैयावच्च छोड़कर स्वाध्याय करने बैठता है । गृहस्थों को भी यह बात

समझनी चाहिए कि यदि घर में किसी की बड़ी तपस्या चल रही हो, तब यदि अपनी आराधना कम हो, तो भी घर के जरूरी काम संभाल लेने चाहिए, तपस्वी की भक्ति करनी चाहिए, उनकी सहायता करनी चाहिए, उन्हें अनुकूलता देनी चाहिए, यह उचित है । ऐसे समय पर यदि आप अपनी ही आराधना पकड़कर रखोगे तो यह अनुचित है ।

❖ जो सर्वत्र उचित कार्य करता है, वह कर्मनिर्जरा तो करता ही है, पर साथ ही साथ अत्यंत लोकप्रिय भी बनता है ।

❖ जिसे भवांतर में प्रभु का शासन चाहिए, उसे इस भव में अपनी शक्तियों (संपत्ति, बुद्धि, बल इत्यादि) का सदुपयोग शासन के कार्यों में ही करना चाहिए । वर्तमान काल की एक विषमता यह है कि कई बार संपत्ति मिलने पर भी संनिष्ठ कार्यकर्ता नहीं मिलते हैं । जो मिलते भी हैं, उनमें से कोई धन के लोभ में अनीति करते हैं, किसीका स्वभाव विचित्र होता है, कोई अभिमानी होता है ।

कभी कोई सुंदर कार्य करता हो, तो भी उसकी छोटी-छोटी भूलों को ढूँढकर दूसरे लोग निंदा करते हैं । उससे परेशान होकर वे लोग काम करना छोड़ देते हैं । कभी-कभी कार्यकर्त्ताओं के बीच किसी मुद्दे पर संघर्ष पैदा हो जाता है, उसमें संक्लेश भी होता है, आक्षेपबाजी भी होती है, और अंत में काम करने का विचार ही कई लोगों का खत्म हो जाता है ।

ऐसे वातावरण के कारण अच्छे सज्जन लोग लगभग संघ में, संस्था में काम करने के लिए आगे आनेका टालते रहते हैं, ऐसे चित्र लगभग अनेक स्थानों पर देखने को मिलते हैं ।

इसलिए पहले तो यह जानना चाहिए कि सारा संसार ही विचित्र है । सभी जगह संक्लेश तो रहनेवाला ही है । मात्र कहीं कोई निंदा करे, कोई संघर्ष करे, आक्षेप करे, इस वजह से शासन की सेवा छोड़ देना, यह तो जूँ होने के डर से कपड़े पहनना ही छोड़ देने जैसा काम है।

जूँ के डर से कोई कपड़े नहीं निकाल देता है, पर कपड़े में से खोजकर जूँ निकाल देते हैं । इसी तरह शासन के कार्यों को करने का प्रयत्न करो जिसमें संक्लेश इत्यादि हो ही नहीं ।

यदि कभी हो, तो भी इसमें यदि तीव्र राग-द्वेष-आर्त्तध्यान करे, जो संक्लेशादि हुए हैं, उसका प्रयाश्चित करे, तो इसका नुकसान बहुत अल्प है, नहीं के बराबर है, जबकि शासनसेवा का लाभ तो बहुत बड़ा होता है । शासन के कार्यों को छोड़ देने में तो बहुत नुकसान है ।

(१) शासन की सेवा से बंधने वाला प्रचंड पुण्य बंद हो जाता है ।

(२) मिला हुआ समय, संसार के आरंभ-समारंभ में चला जाता है, इससे भी दुर्ध्यान ही होता है, जिससे ज्यादा कर्म बंधते हैं ।

(३) इस तरह सज्जन यदि संघ-संस्था से निकल जाते हैं तो दुर्जनों को खुला मैदान मिल जाता है, और वे इस मौके का फायदा उठाकर स्वार्थ को सिद्ध कर लेते हैं ।

ऐसा भी देखने को मिलता है कि कई बार सुंदर कार्य करनेवाले सज्जनों को दूर करने के लिए दुर्जन यही युक्ति अजमाते हैं ।

उनकी निंदा करते है, उनके चरित्र पर आक्षेप करते हैं, झगड़ा खड़ा करते हैं, जिससे परेशान होकर वह सज्जन संस्था को छोड़ देता है और फिर बाकी लोगों को अपनी मनमानी करने का अवसर मिल जाता है।

इसलिए मुझे खास यह कहना है कि ऐसे छोटे-मोटे संघर्ष इत्यादि के कारण संनिष्ठ शासन सेवकों को कभी भी संघ-संस्था को छोड़ना नहीं चाहिए ।

हाँ, यदि किसी को अतितीव्र आर्त्तध्यान हुआ हो, उसकी समाधि ही नहीं रह पाती हो, २४ घंटे दुर्ध्यान होता हो, तो ऐसे संयोग में अपनी समाधि के लिए संस्था छोड़ दे, यह अलग बात है ।

❖ दूसरी बात मुझे सभी से यह कहनी है कि अभी संनिष्ठ कार्यकर्ताओं का भयंकर अकाल है, इसलिए यदि किसी कार्यकर्त्ता की कोई छोटी-

बड़ी भूल हो जाए, तो भी उन पर टूट मत पड़ो, प्रेम से उन्हें समझाओ, सुधारने का प्रयास करो, यदि नहीं सुधर सके, तो थोड़ी कमियों को सहन कर लो, पर ऐसे छोटे-छोटे कारणों के लिए कार्यकर्त्ता का अपमान करने से, उन्हें निकाल देने से, आखिरकार संघ को ही नुकशान होने वाला है ।

❖ किसी अक्षम्य कक्षा भी भूल हो (जैसे कि पैसों का गलत उपयोग....) तो कार्यकर्त्ता को दूर करना पड़े, यह अलग बात है। बाकी जो सज्जन मनुष्य है, तन-मन-धन का भोग देकर कार्य कर रहा है, उसमें थोडे बहुत दोष हों (जो छद्मस्थता के कारण रहने वाले ही हों) कुछ अभिमान, कुछ जल्दबाजी, कुछ दूसरोंसे पूछे बिना ही कर लेना....ऐसे दोषों की खातिर उसे सभी के बीच में अपमानित करने से या संस्था से दूर कर देने से प्रायः बाद में शासन को नुकसान ही होने वाला है। इसलिए शासन के हित की खातिर सभी को थोड़ा सहन करना सीखना चाहिए। जो लोग (सही या गलत) टीका करके कार्यकर्ताओं का उत्साह तोड़ देते हैं, वे शासन को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं और इस कारण अशुभ कर्म बांधते हैं।

❖ प्रत्येत वस्तु किसी अपेक्षा से सही होती है, तो किसी अपेक्षा से गलत होती है ।

जैसे प्रभु की द्रव्यपूजा से पुण्य बंधता है। यह बात श्रावक की अपेक्षा से सही हैतो साधु की अपेक्षा से गलत है ।



सफलता का आधार - पुन्य

❖ यह बराबर याद रखना चाहिए कि संसार में सफलता पुन्य से ही मिलती है, पुरुषार्थ अत्यंत गौण है ।

पुन्य न हो, तो कितना भी पुरुषार्थ करने पर सफलता नहीं ही मिलती ।

देखो इसके उदाहरण -

❖ महामंत्रीश्वर विमलशाहने आराधना करके अंबिकादेवी को प्रत्यक्ष प्रगट करके दो चीज की मांग की ।

१. आबु के पर्वत पर जिनमंदिर के निर्माण में सहायता ।

२. संतान की प्राप्ति ।

तब देवीने कहा - "दोनों की प्राप्ति हो, ऐसा पुण्य आपके पास नहीं है । चाहे तो एक माँग लो ।"

विमलशाहने मंदिर माँग लिया ।

यह प्रसंग बताता है कि हमारे पुन्य में जो चीज नहीं है, वह देने का सामर्थ्य देवों में भी नहीं है ।

❖ अरिहंत परमात्मा दीक्षा के पहले जब वरसीदान देते हैं, तब भगवान के खंधे पर इन्द्र अदृश्य रुप से बैठता है, माँगनेवाले के पुन्य से यदि परमात्मा ज्यादा दे रहे हो, तो इन्द्र कम कर देता है ।

यह बताता है कि जो चीज हमारे पुन्य में नहीं है, उसे परमात्मा भी नहीं दे सकते ?

(यह बात द्रव्य-तीर्थंकर की है । प्रभु-भक्ति से पुन्य बढता है और उससे सब-कुछ मिल भी सकता है - यह बात अलग है ।)

❖ पुन्य न हो तो मिली हुई चीज टिकती नहीं ।

पुन्य से प्राप्त हुई चीज भी पुन्य के खत्म होने पर चली जाती है ।

देखो इसके प्रसंग –

❋ वासुदेव के शरीर में इतनी ताकत होती है कि

∗ १ क्रोड मण वजन की कोटिशिला को एक हाथ से उठा सके ।

∗ ३२००० राजाओं को अकेले एक हाथ से एक साथ खींच सके ।

ऐसी ताकातवाले कृष्ण वासुदेव का पुन्य खत्म हुआ तब क्या हुआ ?

द्वैपायनने द्वारिका नगरी जलाई, तब कृष्ण और बलराम अपने माता–पिता को लेकर रथ में भागे । नगर के दरवाजे पर रथ के पहिए जमीन में अटक गये । जोर लगाने पर भी घोडे उसको निकाल न सके । कृष्ण और बलराम रथ से उतरे । स्वयं घोडे की जगह रथ को खींचने लगे । फिर भी रथ नहीं चला । देवने आकाश से कहा, ‘‘मैं कृष्ण और बलराम के सिवा किसी को छोड़नेवाला नहीं हूँ । व्यर्थ पुरुषार्थ मत करो ।’’ आखिरकार, माता–पिता को छोड़कर कृष्ण–बलराम को भागना पडा । माता–पिता जलकर मर गये ।

❖ सुभूम चक्रवर्ती की सेवा में १६००० देव थे । उसकी आज्ञा से उसे पालखी में उठाकर लवणसमुद्र के उपर से जा रहे थे । एक देव के मनमें विचार आया – ‘‘यह पालखी उठाने के लिये एक देव काफी है । इतने सारे की क्या जरुरत है ? मैं छोड़ दूँगा तो कुछ फर्क नहीं पडेगा ।’’ उसी वक्त सभी देवों के मनमें यही विचार

आया, सभी ने एक साथ पालखी छोड़ दी । सुभूम लवणसमुद्र में डूबकर मर गया । सभी देवों के मनमें एकसाथ ऐसा विचार क्यों आया ? क्योंकि सुभूम का पुन्य खत्म हो गया था ।

❖ सार यही है कि पुन्य के बिना सफलता मिलती नहीं, मिली हुई भी चली जाती है ।

इसलिये संसार में निष्फलता मिले तो दोष अपने कर्मों का ही है, दूसरे किसी का नहीं ।

यदि सफलता चाहिए, तो उसके लिये पुन्य ही बढ़ाना चाहिए, जो धर्म करने से ही बढ़ता है ।

